CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

INDICA

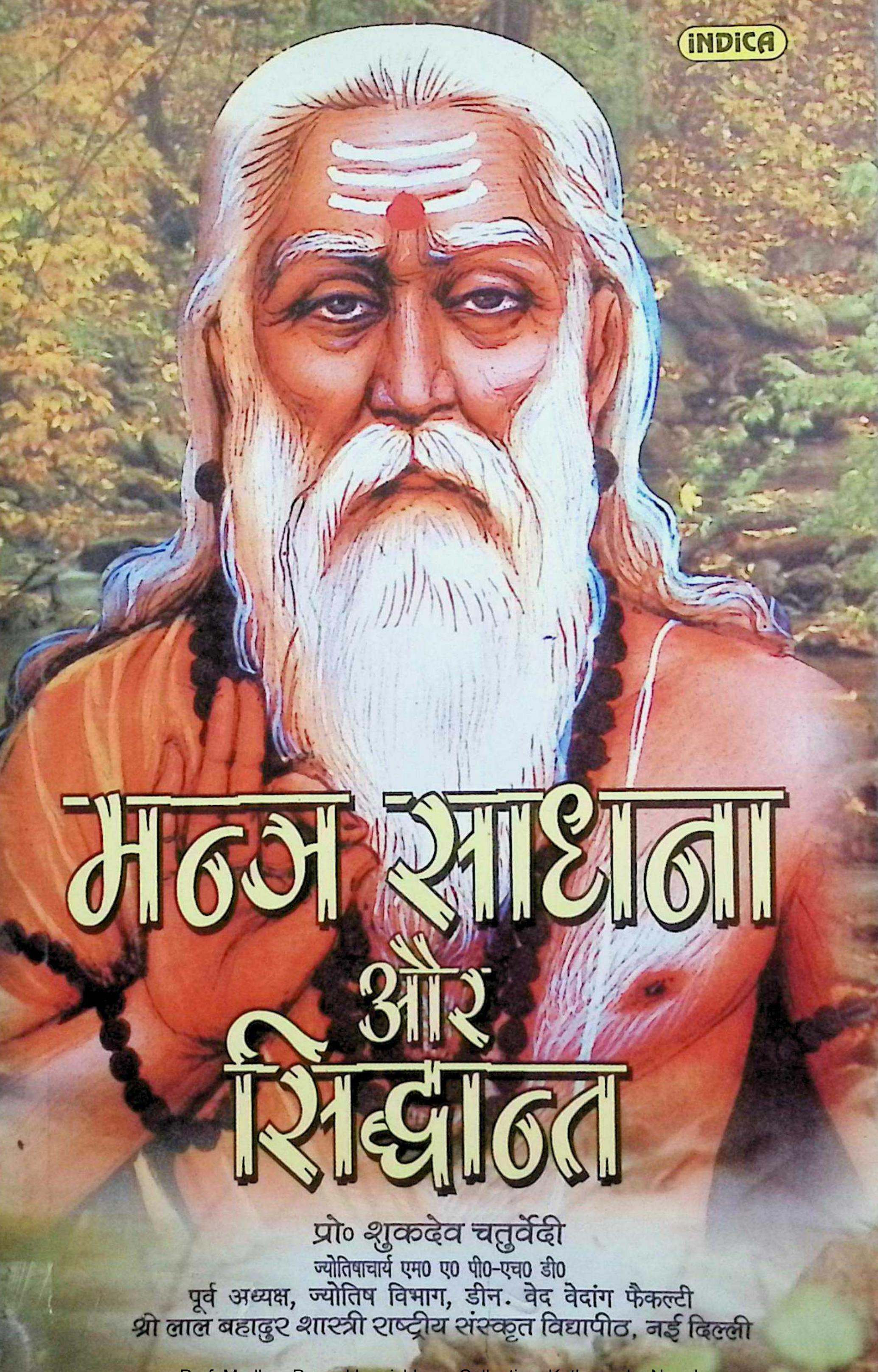

मन्त्र साधना और सिद्धान्त

प्रो० शुकदेव चतुर्वेदी
ज्योतिषाचार्य एम० ए० पी०-एच० डी०
पूर्व अध्यक्ष, ज्योतिष विभाग, डीन. वेद वेदांग फैकल्टी
श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ, नई दिल्ली

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

INDICA™

मन्त्र साधना और सिद्धान्त

प्रो० शुकदेव चतुर्वेदी
ज्योतिषाचार्य एम० ए० पी०-एच० डी०
पूर्व अध्यक्ष ज्योतिष विभाग
डीन. वेद वेदांग फैकल्टी
श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ,
नई दिल्ली

INDICA PUBLISHERS
Ph.- 23243756, 23240270, 23240256,
9311402424, 9313492424

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

JAI MATA DI

लेखक : प्रो. शुकदेव चतुर्वेदी

प्रकाशक : प्रदीप कुमार
इंडिका पब्लिशर्स
1680-81, मेहता मार्केट
नई सड़क, दिल्ली-110006
फोन - 23243756, 23240270, 23240256
9311402424, 9313492424
E-mail : Indica_pradeep@yahoo.co.in
Website : www.indica.com

© लेखक

शब्द संयोजक : इंडिका
साज-सज्जा : अजीत शर्मा
प्रोसेसिंग : रैव स्कैन प्रा. लि.
मुद्रक : चनाब ऑफसैट, दिल्ली

मन्त्रसाधना और सिद्धान्त

ISBN : 81-7727-312-4

मूल्य : 150.00 US $ -13.95 £- 8.95

चेतावनी : भारतीय कॉपीराइट एक्ट के अन्तर्गत इस पुस्तक के तथा इसमें समाहित सारी सामग्री (रेखा व छायाचित्रों सहित) के सर्वाधिकार लेखक के पास सुरक्षित हैं। इसलिए कोई भी सज्जन इस पुस्तक का नाम, टाइटल डिजाइन, अंदर का मैटर व चित्र आदि आंशिक या पूर्णरूप से तोड़-मरोड़ कर एवं किसी भी भाषा में छापने व प्रकाशित करने का साहस न करें, अन्यथा कानूनी तौर पर वे हर्जे-खर्चे व हानि के जिम्मेदार होंगे।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पुरोवाक्

भारतीय परम्परा में मन्त्र हमारी आस्था एवं विश्वास का केन्द्र-बिन्दु है। यह केवल वैदिक या तान्त्रिक परम्परा से सम्बद्ध नहीं है, अपितु इसका सम्बन्ध मानव-संस्कृति है। विश्व में ऐसा कोई धर्म नहीं और ऐसा कोई प्राणी नहीं, जो इसकी उपासना न करता हो। हिन्दुओं के साथ-साथ जैन, बौद्ध सिक्ख, मुस्लिम एवं ईसाई आदि सभी धर्मों में मन्त्र साधना को सर्वोपरि माना जाता है।

मन्त्र, यन्त्र एवं तन्त्र तात्त्विक दृष्टि से भिन्न-भिन्न नहीं है, अपितु ये तीनों एक ही सत्य के तीन रूप है। व्यक्ति की प्रसुप्त आध्यात्मिक चेतना को जगाकर उसमें दैवी शक्ति का संचार करने वाला गूढ़ज्ञान मन्त्र कहलाता है। इसी मन्त्र का प्रतीकात्मक रूप यन्त्र है और इसी का क्रियात्मक विज्ञान तन्त्र कहलाता है। इस प्रकार मन्त्र, यन्त्र एवं तन्त्र इन तीनों में तात्त्विक या पारमार्थिक दृष्टि से अभेद है।

अभीष्ट की प्राप्ति और अनष्टिों के परिहार के लिए हमारी ऋषि परम्परा द्वारा प्रतिपादित यह शास्त्र 'गोपनीयं गोपनीयं गोपनीयं प्रयत्नतः' की प्रवृत्ति के कारण आज न केवल गुप्त हो गया है, अपितु यह लुप्त होता जा रहा है।

संस्कृत के दुर्लभ ज्ञान को जन-जन तक पहुँचाने के उद्देश्य से विद्यापीठ में प्रो. शुकदेव चतुर्वेदी के निर्देशन में इस गूढ़ विद्या पर शोध कार्य किया गया। 'मन्त्र साधना और सिद्धान्त' इस दिशा में किये गये शोध का एक परिणाम है। यह कृति ज्योतिषशास्त्र, मन्त्रशास्त्र एवं वास्तुशास्त्र के अधिकारी विद्वान प्रो० चतुर्वेदी की वर्षों की सारस्वत साधना का फल है।

इस मौलिक एवं शास्त्रीय शोधकार्य के लिए मै प्रो० चतुर्वेदी को हार्दिक साधुवाद देते हुए मन्त्रशास्त्र का यह ग्रन्थ आस्थावान पाठको को समर्पित करता हूँ। आशा है यह ग्रन्थ आपकी मन्त्र साधना की जिज्ञासा एवं शंकाओं का समाधान करने में प्रकाश स्तम्भ का कार्य करेगा।

प्रो० वाचस्पति उपाध्याय
कुलपति
श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ
नई दिल्ली

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रकाशक की कलम से...

प्रो॰ शुकदेव चतुर्वेदी

संस्कृत में निहित ज्योतिषशास्त्र, वास्तुशास्त्र एवं मंत्रशास्त्र के दुर्लभ ज्ञान को जन-जन तक पहुंचाने और इन शास्त्रों में मौलिक शोध करने के लिए प्रो. शुकदेव चतुर्वेदी को भारत के राष्ट्रपति द्वारा दि. 6 दिसम्बर 2005 को राष्ट्रपति भवन में आयोजित एक भव्य समारोह में पचास हजार रूपये वार्षिक की आजीवन फेलोशिप के साथ सम्मान पत्र प्रदान कर सम्मानित किया गया है।

प्रो. चतुर्वेदी विगत 35 वर्षों से श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ, नई दिल्ली में अध्ययन, अध्यापन एवं शोध कार्य में रत रहे है, एवं विद्यापीठ के ज्योतिष विभाग के अध्यक्ष तथा वेदवेदांग फैकल्टी के डीन रहे हैं।

प्रो. चतुर्वेदी के 15 मौलिक ग्रंथ, 10 व्याख्या एवं भाष्यग्रंथ, 50 से अधिक शोध पत्र एवं 300 से अधिक लेख प्रकाशित उपलब्ध हैं। इन्होंने दैनिक हिंदुस्तान के लोकप्रिय कालम 'दाम्पत्य परामर्श' तथा दैनिक भास्कर एवं राजस्थान पत्रिका आदि समाचार पत्रों प्रकाशित लेखों के माध्यम से इन शास्त्रों के सारतत्त्व को जनसाधारण तक पहुंचाने का सराहनीय प्रयास किया है।

इनको इंडियन काउन्सिल ऑफ एस्टोलॉजीकल साइन्सेज ने 'ज्योतिषभानु', मिस्टिक इंडिया ने ज्योतिषभास्कर', दिल्ली संस्कृत अकादमी ने 'अखिल भारतीय संस्कृत सेवा सम्मान 'राष्ट्रीय वेद विद्या प्रतिष्ठान, उज्जैन ने 'वेदांगोपवेद विद्वान पुस्कार' से सम्मानित किया है।

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की उच्चस्तरीय समितियों के माध्यम से इन्होंने देश के अनेक विश्वविद्यालयों में स्वतंत्र रूप से ज्योतिर्विज्ञान विभाग की स्थापना में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। इनके सतत प्रयत्नों से देश की ज्योतिष संस्थाओं का एक अखिल भारतीय फेडरेशन 'ज्योतिष संस्था संघ' के नाम से भारत की राजधानी में गठन किया गया। आप इस संस्था के संरक्षक हैं। आज इस फेडरेशन के एक सौ से अधिक चैप्टर देश एवं विदेशों में ज्योतिष के अध्ययन एवं अध्यापन के लिए समर्पित भाव से कार्य कर रहे हैं।

आपका अपना
प्रदीप कुमार

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

दो शब्द

समय एवं परिस्थितियों की प्रतिकूलता से त्रस्त मानव को पुनः सन्तुलिकर सफलता की ओर ले जाने में मन्त्र साधना की भूमिका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसीलिए समस्या एवं संकटों से घिरे मनुष्यों को विश्व के सभी धर्मों ने मन्त्र एवं प्रार्थना का आश्रय लेने की सलाह दी है।

भारतीय चिन्तनधारा में मन्त्र की महनीयता एवं कमनीयता इसलिए मानी गयी हैं, क्योंकि यह व्यकित की सुप्त या लुप्त आत्मीय शक्ति को जगाकर दैवीशक्ति के साथ सामंजस्य स्थापित करने वाला गूढ़ज्ञान है। और इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह अपने एक हाथ से साधक को भोग और दूसरे हाथ से मोक्ष प्रदान करता है। व्यक्ति के जीवन की कैसी भी समस्या क्यों न हो- चाहे वह शारीरिक, मानसिक, आर्थिक, व्यवसायिक पारिवारिक, सामाजिक, राजनैतिक या आध्यात्मिक हो- मन्त्रसाधना अभीष्टसिद्धि का सबसे विश्वसनीय साधन माना जाता है।

तक्षशिला एवं नालन्दा के विध्वंस में विदेशी आकान्ताओं ने इस शास्त्र के हजारों ग्रन्थों की होली जला दी थी। फिर भी आस्थावान् साधको के संग्रह में इस शास्त्र के सैकड़ों ग्रन्थ आज

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भी सुरक्षित एवं उपलब्ध है। इस शोध कार्य के लिए कराये गये एक सर्वेक्षण के अनुसार भारत, नेपाल, भूटान, सिक्किम, तिब्बत , वर्मा एव श्रीलंका के पुस्तकालयों एव पोथीखानों में इस शास्त्र के हस्तलिखित एवं प्रकाशित अपूर्ण एवं सम्पूर्ण लगभग 200 ग्रन्थ मिलते है, जिनकी सूची इस ग्रन्थ के अन्त में दी गयी है।

ये सभी ग्रन्थ संस्कृत में लिखित हैं। लौकिक संस्कृत भाषा की तुलना में वैदिक एवं तान्त्रिक संस्कृत बहुत ही दुरुह एवं क्लिष्ट हैं। मन्त्र साधना के इस जीवनोपयोगी एवं परम्परागत ज्ञान को जन-गण-मन तक पहुंचाने के लिए मैं इस शोधकार्य में प्रवृत्त हुआ और इसके परिणाम स्वरूप यह ग्रन्थ अपने विज्ञ पाठ्को के हार्थो में सौंपते हुए मुझे अपार हर्ष हो रहा है।

इस शोध कार्य के लिए प्रेरित करने और समय-समय पर एतदर्थ सुविधा जुटाने के लिए मैं श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ नई दिल्ली के कुलपति प्रो. वाचस्पति उपाध्याय का आभारी हूँ। जिनकी समयोचित सहायता के बिना यह कार्य पूरा नहीं हो सकता था।

मेरा विश्वास है, कि इसके अध्ययन से मन्त्रशास्त्र की मूलसंकल्पना और आधारभूत सिद्धान्तों को हृदयंगम करने के साथ-साथ मन्त्र साधना के प्रयोग की पद्धति की जानकारी मिलेगी।

शमिति
प्रो. शुकदेव चतुर्वेदी

डी 2/73, राजस्थली, अर्पाटमेन्ट्स
पीतमपुरा, दिल्ली–110034
दूरभाष–27013735, 27026068
महाशिव रात्री वि. सं. 2063
दि. 16.2.2007
दिल्ली

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विषय सूची

सिद्धान्त खण्ड

1 मानव-जीवन 13-14

2 दुःख और उसके कारण....................15-22

प्रारब्ध, प्रकृति (स्वभाव), परिस्थिति, काल

3 कारण एवं उनकी भूमिका....................23-24

4 दुःखों के कारणों के निर्धारण एवं निवारण में ज्योतिष की भूमिका....................25-27

5 मन्त्र एवं उसकी विश्वसनीयता....................28

6 मन्त्र की परिभाषा....................29-31

7 मन्त्रों के भेद....................32-35

8 मन्त्र साधन 36-62

मन्त्र मेलापक, कुलाकुलचक्र, राशिचक्र, नक्षत्रचक्र, अकडमचक्र, अकथहचक्र ऋणी-धनीचक्र, मन्त्र मेलापक का अपवाद, मन्त्रार्थ, मन्त्र-चैतन्य, मन्त्रों की कुल्लुका, मन्त्र सेतु, महासेतु, निर्वाण, मुख शोधन, प्राणयोग, दीपिनी, मन्त्र के सूतक, मन्त्र के दोष, दोषनिवृत्ति के उपाय, जनन, दीपन, बोधन, ताडन अभिषेक, विमलीकरण, जीवन, तर्पण, गोपन एवं आप्यायन

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

9 परम्परागत शिक्षा-पद्धति एवं उसका रहस्य..........63-84

शास्त्र/मन्त्रशास्त्र, विश्वास एवं निष्ठा, आत्मविश्वास, इष्ट्देव में निष्ठा,, सतत अभ्यास, दीक्षा, मन्त्र साधना की विधि

10 साधनाविधि के सोलह अंग................................85-113

भक्ति, शुद्धि, कायशुद्धि, चित्तशुद्धि, दिक्शुद्धि, स्थानशुद्धि, आसन, पचांग सेवन, आचार, धारणा, दिव्यदेशसेवन, प्राणक्रिया, मुद्रा, षडङ्गन्यास की

मुद्राओं के चित्र, आठ मुद्राएं, विष्णु की प्रिय मुद्राएं, शिव की प्रिय मुद्राएं, गणेश की प्रिय मुद्राएं, दुर्गा की प्रिय मुद्राएं, श्यामा एवं शक्ति की प्रिय मुद्राएं, तारा की प्रिय मुद्राऐं, त्रिपुरा की प्रिय मुद्राएं, अन्य देवताओं की प्रिय मुद्राएं, अन्य उपयोगी मुद्राएं, तर्पण, हवन, अग्नि, समिधा, दिशा एवं कुण्ड, हवनविधि, बलि, याग, जप, ध्यान एवं समाधि

प्रयोग खण्ड

11 पुरश्चरण 116-122

मन्त्र-पुरश्चरण, पुरश्चरण का स्थान, दीपस्थान एवं कूर्मचक्र, पुरश्चरण में आहार के नियम; ग्रहण-पुरश्चरण

12 श्री गणेश...123-130

विनियोग, ऋष्यादिन्यास, करन्यास, अंगन्यास, श्रीगणेश मन्त्र का ध्यान, शक्तिविनायक मन्त्र, विनियोग, ऋष्यादिन्यास, करन्यास, षडङ्गन्यास ध्यान लक्ष्मीविनायक मन्त्र, विनियोग, ऋष्यादिन्यास, करन्यास, अंगन्यास, ध्यान, सिद्धिविनायक मन्त्र, विनियोग, ऋष्यादिन्यास, करन्यास, षडङ्गन्यास, ध्यान, सिद्धिविनायक के अन्य मन्त्र, सर्वसिद्धिदायक गणेश मन्त्र, विनियोग, ऋष्यादिन्यास, करन्यास, षडङ्गन्यास, ध्यान, गणेश पूजन-यन्त्र

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

13 कृष्ण 131-135

गोपाल मन्त्र, विनियोग, ऋष्यादिन्यास, पञ्चांगन्यास, वर्णन्यास, ध्यान, द्वादशाक्षर मन्त्र, विनियोग, ऋष्यादिन्यास, पञ्चांगन्यास, ध्यान

14 नृसिंह 136-137

उपसर्गनाशक नृसिंह मन्त्र, विनियोग, ऋष्यादिन्यास, करन्यास, षडङ्गन्यास, ध्यान, नृसिंह पूजन-यन्त्र

15 हनुमद् 138-141

उपसर्ग एवं भयनाशक हनुमद् मन्त्र, विनियोग, ऋष्यादिन्यास, करन्यास, षडङ्गन्यास, ध्यान श्री हनुमत्पूजन- यन्त्र रोग, रिपु एवं संकटनाशक हनुमन्मन्त्र, विनियोग, ऋष्यादिन्यास, षडङ्गन्यास, ध्यान, उपसर्ग एवं भयनाशक अन्य मन्त्र

16 शिव 142-147

दशाक्षर शिवमन्त्र, विनियोग, पञ्चांगन्यास, ध्यान, महामृत्युञ्जय पूजन-यन्त्र, विनियोग, ऋष्यादिन्यास, करन्यास, षडङ्गन्यास, ध्यान, महामृत्युञ्जय मन्त्र, ऋष्यादिन्यास, षडन्यास, वर्णन्यास, पदन्यास

17 कार्तवीर्य 148-149

विनियोग, पञ्चांगन्यास, ध्यान कार्तवीर्यार्जुनका पूजन-यन्त्र

18 सम्पन्नता के लिए कुबेर 150-152

सम्पन्नता के लिए कुबेर मन्त्र, विनियोग , करन्यास, षडङ्गन्यास, ध्यान, कुबेर यन्त्र, कुबेर का अन्य मन्त्र, ऋष्यादिन्यास करन्यास, षडङ्गन्यास

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

19 दुर्गा 153-154

नवार्णमन्त्र (दुर्गा), दुर्गा पूजन-यन्त्र, विनियोग, ऋष्यादिन्यास, करन्यास, षडङ्गन्यास, वर्णन्यास, ध्यान

20 लक्ष्मी 155-158

विनियोग, पञ्चागन्यास, ध्यान, महालक्ष्मी मन्त्र, लक्ष्मी यन्त्र, महालक्ष्मी मन्त्र, विनियोग, ऋष्यादिन्यास, करन्यास अंगन्यास, ध्यान

21 सरस्वती 159-162

वागीश्वरी (सरस्वती) मन्त्र, विनियोग, करन्यास, अंगन्यास, वर्णन्यास, ध्यान, वागीश्वरी यन्त्र, महासरस्वती मन्त्र, मन्त्रन्यास, ध्यान

22 महागौरि.. 163-165

महागौरिमन्त्र, विनियोग, ऋष्यादिन्यास, करन्यास,अंगन्यास, ध्यान महागौरी यन्त्र, मंगलागौरिमन्त्र, विनियोग, करन्यास, षडङ्गन्यास

23 दरिद्रतानाशक रवि.. 166-168

दरिद्रतानाशक, विनियोग, ऋष्यादिन्यास, षडङ्गन्यास, अंगन्यास, पंचमूर्तिन्यास, वर्णन्यास, ग्रहन्यास, ध्यान, सूर्य पूजन-यन्त्र

24 मन्त्र के मूल स्त्रोत.. 169-173

मन्त्र का व्यापक क्षेत्र

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सिद्धान्त खण्ड

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

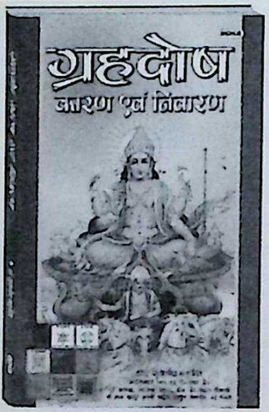

प्रो. शुकदेव चतुर्वेदी

ग्रहदोष कारण एवं निवारण

ग्रहों के अनिष्ट प्रभाव की शान्ति के लिए उनके मन्त्रों का अनुष्ठान और अपनी मनोकामना की पूर्ति के लिए कामना भेद से विविध देवी-देवताओं के मन्त्रों के अनुष्ठान की विधियों का वर्णन एवं विवेचन के लिए लिखित 'ग्रहदोष-कारण और निवारण' नामक यह ग्रन्थ 'रिमेडियल एस्ट्रालॉजी' की एक अपूर्व रचना है।

वैदिक परम्परा में जन सामान्य के कल्याण के लिए इष्टप्राप्ति एवं अनिष्ट परिहार के उपायों का प्रतिपादन सुदूर प्राचीनकाल से होता आ रहा है। वैदिक संहिताओं में इसके लिए यज्ञ-यागों का वर्णन मिलता है। इन यज्ञों के लिए धन एवं समय प्रचुर मात्रा में चाहिए। साथ ही इनको कोई व्यक्ति अकेले नहीं कर सकता। क्योंकि इसके लिए वैदिक विद्वानों की एक मण्डली चाहिए। इसलिए वैदिक यज्ञों के अनुष्ठान कभी-कभी और कोई-कोई व्यक्ति ही कर पाता है।

मूल्य : 125.00

मानव जीवन की इसी कठिनाई का समाधान करने के लिए हमारे ऋषियों ने मन्त्र शास्त्र का आविष्कार एवं विकास किया, जिससे प्रत्येक व्यक्ति अपने घर या सुविधाजनक स्थान पर मनोयोगपूर्वक मन्त्र का अनुष्ठान कर अनिष्ट ग्रहों के प्रभाव से बचाव और अपनी मनोकामना पूरी कर सके।

मन्त्र शास्त्र की इसी परम्परा के अनुसार इस ग्रन्थ में रोग, शोक, भय, उपसर्ग बाधा, सन्तान बाधा, विवाह बाधा, दरिद्रता, बेकारी, शिक्षा एवं व्यवसाय में कठिनाईयों के कारण का निर्धारण, जन्मकुण्डली के योगों के द्वारा और उनका निवारण विविध मन्त्रों के द्वारा बतलाया गया है।

इस प्रकार 'रिमेडियल एस्ट्रोलॉजी' की यह शास्त्रीय रचना ज्योतिष विद्वान, अध्येता एवं जिज्ञासु पाठकों के लिए समान रूप से पठनीय एवं संग्रहणीय है।

प्रदीप कुमार

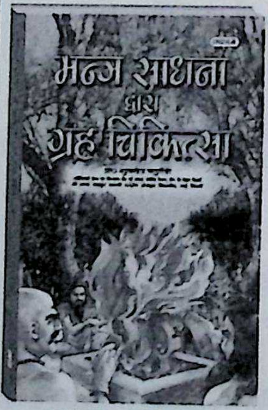

प्रो. शुकदेव चतुर्वेदी

मन्त्र साधना द्वारा ग्रह चिकित्सा

ग्रहों के अनिष्ट प्रभाव के निवारण के लिए यू. जी. सी. द्वारा स्वीकृत एवं श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ, नई दिल्ली द्वारा 'मेडीकल एस्ट्रोलॉजी' के पाठ्यग्रन्थ के रूप में लिखित इस पुस्तक में मन्त्र का स्वरूप, मन्त्र की परिभाषा, मन्त्र के भेद, मन्त्र का अर्थ, मन्त्र चैतन्य, मन्त्रसाधना के प्रधान एवं सहायक उपकरणों के साथ ग्रह शांति के लिए ग्रहों के वैदिक मन्त्र, तान्त्रिक मन्त्र, नाम मन्त्र, पौराणिक मन्त्र एवं जैन मन्त्रों का वर्णन एवं विवेचन किया गया है।

मूल्य : 100.00

साथ ही वैदिक परम्परा के अनुसार ग्रहों का अपने अधिदेव एवं प्रत्यधिदेव के साथ आवाहन, पूजन एवं हवन के द्वारा ग्रह शान्ति के अनुष्ठान का निरूपण किया गया है।

इस लघुकलेवर ग्रन्थ में अरिष्ट योग, रोग योग, केमद्रुम योग, कालसर्प योग, निर्धन एवं दरिद्री योग, मंगली योग, विवाह बाधा योग, सन्तान बाधा योग, उपसर्गबाधा योग एवं ऐसे ही अन्य अनिष्टकारी योगों की शांति के मन्त्रों का प्रतिपादन किया गया है। इस प्रकार ग्रहों के अनिष्ट प्रभाव के निवारण के लिए 'रिमेडियल एस्ट्रोलाजी' पर लिखित यह पाठ्यग्रन्थ वैदिक ज्योतिष के विद्वानों, छात्रों एवं जिज्ञासुओं के लिए समान रूप से पठनीय एवं संग्रहणीय है।

प्रदीप कुमार

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

1

मानव-जीवन

मानव जीवन क्या है? इस प्रश्न का प्राच्य एवं पाश्चात्य चिन्तकों ने बड़ी गम्भीरता से विचार किया है। भौतिकवाद एवं अध्यात्मवाद के परिप्रेक्ष्य में इसका विचार कर इसकी अनेक परिभाषाएं दी गयी हैं। किन्तु यदि इस प्रश्न का तथ्यपरक एवं यथार्थमूलक उत्तर दिया जाए, तो यह कहा जा सकता है - 'कि जीवन दुःखों का एक पिटारा है'। इसको जब भी, जैसे भी और जिस तरह भी खोला जाए - दुःख ही दुःख दिखलाई देते हैं। इसमें ऐसा कोई कोना या जगह नहीं बची है, जहाँ कोई न कोई समस्या या संकट पहले विद्यमान न हो। वस्तुतः मानव-जीवन समस्या एवं संकटों की सत्यकथा है।

कुछ लोगों को यह भ्रान्ति है, कि सत्ता एवं सम्पत्ति से दुःख दूर हो जाते हैं। अथवा इनसे समस्या और संकटों से छुटकारा पाया जा सकता है। वस्तुतः यह एक व्यामोह या सुखद कल्पनामात्र है। क्योंकि जैसे आग में घी डालने से वह और भड़क जाती है, ठीक वैसे ही सत्ता या सम्पत्ति के मिलने से समस्या और संकट ज्यादा गहराते हैं। यदि सत्ता या सम्पत्ति से जीवन की समस्याओं अथवा संकटों का समाधान हो जाता, तो सत्ताधीशों और सम्पन्न लोगों को कोई कष्ट नहीं होता। किन्तु इन लोगों को कितने कष्ट झेलने पड़ते हैं? यह सभी लोग जानते हैं। कारण यह है, कि सत्ता और सम्पत्ति लोगों को मजबूत कम करती है, जब कि मजबूर ज्यादा।

इस विषय का तटस्थ भाव से यथार्थपरक चिन्तन किया जाए, तो निष्कर्ष में एक बात साफ हो जाती है, कि चाहे दुःख किसी भी प्रकार का हो - वह शारीरिक, मानसिक, आर्थिक, पारिवारिक, व्यावसायिक, सामाजिक या

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

राजनीतिक हो - उसके पूर्णरूपेण समाधान की प्रविधि मन्त्र-साधना के अलावा और कोई नहीं है।

साक्ष्य के रूप में शारीरिक एवं मानसिक रोगों को उदाहरण के लिए लिया जा सकता है। इन रोगों की चिकित्सा के लिए अनेक पद्धतियों का विकास हो चुका है, जिनमें एलोपैथी, होम्योपैथी, आयुर्वेद एवं तिब्बिया आदि प्रमुख हैं। इन चिकित्सा पद्धतियों पर सैकड़ों-हजारों वर्षों से शोध कार्य चल रहा है और बीसवीं शताब्दी में इनके अनुसन्धान एवं विकास पर खरबों डालर खर्च किए जा चुके हैं। किन्तु ये बुखार की कोई ऐसी दवाई तैयार नहीं कर पायीं, जिसके एक बार सेवन से यह छोटा सा रोग हमेशा के लिए ठीक हो जाए अर्थात् इस से हमेशा-हमेशा के लिए छुटकारा मिल सके। एक और बात यह है कि इन चिकित्सा पद्धतियों ने उक्त साधारण-से रोगों के लिए ऐसी कोई दवाई अभी तक नहीं बनायी है, जिससे एक जैसे रोग से ग्रस्त सभी मरीजों का उपचार किया जा सके। तात्पर्य यह है कि बुखार से पीड़ित सभी मरीजों का इलाज करने के लिए कोई एकमात्र दवा आज तक उपलब्ध नहीं है। इसलिए बुखार के भिन्न-भिन्न रोगियों के उपचार के लिये भिन्न-भिन्न प्रकार की दवाइयां दी जाती हैं। जब विकसित चिकित्सा पद्धतियों के होने पर भी - अच्छे से अच्छा इलाज करने पर भी सिरदर्द, सर्दीजुकाम या बुखार जैसे रोगों को बार-बार होना ही है, तो ऐसी चिकित्सा से क्या लाभ है।

सचमुच में शारीरिक एवं मानसिक रोगों की चिकित्सा से मिलता-जुलता हाल आर्थिक, पारिवारिक व्यावसायिक, सामाजिक एवं राजनीतिक कष्टों का है। इनके समाधान के लिए आधुनिक ज्ञान-विज्ञान ने कोई कोर कसर नहीं छोड़ी है। किन्तु इन समस्याओं एवं संकटों के समाधान का जितना अधिक प्रयत्न किया गया है, ये उतने ही बढ़ रहे हैं। यदि बार-बार अच्छी से अच्छी दवाई देने पर मर्ज बढ़ता ही जाए, तो फिर इसके बारे में गम्भीरतापूर्वक सोचना जरूरी है।

मानव जीवन की इस गम्भीर स्थिति का चिन्तन करने वाले ऋषियों एवं मनीषी आचार्यों का इस विषय में स्पष्ट मत है - कि इन दुःखों या कष्टों के निवारण से पूर्व इनके कारणों को गम्भीरता एवं निष्पक्षता पूर्वक विचार कर लेना चाहिए। क्योंकि कारण के जाने और पहचाने बिना उसका निवारण सम्भव नहीं होता। अतः इन दुःखों के निवारण की प्रविधि की चर्चा एवं विवेचना करने से पहले इनके कारणों का विचार किया जाना चाहिए।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

2

दुःख और उसके कारण

संसार के सभी प्राणी सुख को चाहते हैं और उसके लिए प्राणपण से प्रयत्न करते हैं। किन्तु वह उन्हें मिल नहीं पाता। कभी-कभार सुख की एक झलक मिलती है। किन्तु वह पानी के बुलबुले के समान तुरन्त अभाव में विलीन हो जाता है और फिर दुःखों का सिलसिला लगातार चलता रहता है। यह दुःख अनेक रूपरूपाय है। कभी यह असुरक्षा के रूप में, कभी असुविधा के रूप में, कभी अभाव के रूप में, कभी असन्तोष के रूप में, कभी यह बाधा के रूप में और कभी यह अन्यान्य रूप में आकर हमें दुःखी करता है। दुःखों के रूप एवं भेद अनन्त हैं। अतः इनको परिभाषित करना भी कठिन है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain: Digitization by eGangotri

प्राच्य विद्याओं के प्रवर्तक ऋषियों[1] ने अपनी अन्तर्दृष्टि से दुःखों के समस्त रूपों एवं भेदों का अवलोकन कर इसको सही और सटीक ढंग से परिभाषित किया है, 'कि जिससे किसी भी प्रकार की वेदना का अनुभव हो – वह दुःख है।[2] भारतीय चिन्तन धारा में दुःखचिन्तकों के विचार का केन्द्र बिन्दु रहा है। इन चिन्तकों ने दुःख को इस प्रकार परिभाषित किया है –

1. इच्छा की पूर्ति न होने से उत्पन्न होने वाली वेदना दुःख है।
2. अनिच्छित घटना घटने से उत्पन्न होने वाली वेदना दुःख है।
3. मन और भावना को आघात पहुँचाने वाली घटना दुःख है।

इन सभी परिभाषाओं के माध्यम से दुःखों का विचार किया जाए, तो यह कहा जा सकता कि जो घटना मन को विचलित एवं व्यथित करती है, वह दुःख कहलाती है। और यदि मन के विचलन को नियन्त्रित कर लिया जाए, तो दुःखों को नियन्त्रित किया जा सकता है।

दुःखों के नियन्त्रण की प्रविधि एवं पद्धति के विवेचन करने से पहले दुःखों को उत्पन्न करने वाले कारणों का विचार करना आवश्यक है। आगम शास्त्र के प्रणेता ऋषियों ने, जिन्होंने मन्त्र, यन्त्र एवं तन्त्र साधना के आधारभूत सिद्धांतों तथा प्रक्रियाओं के रहस्यों को उद्घाटित किया है।

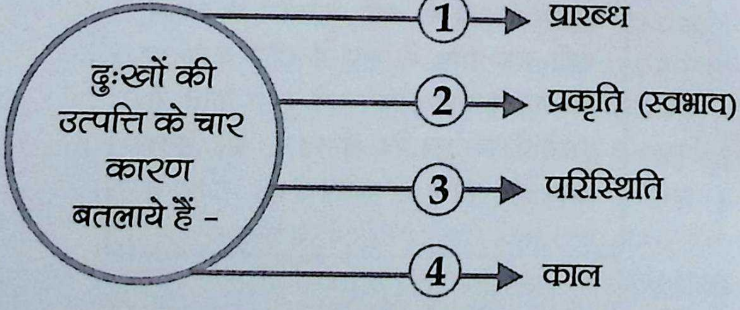

1. गौतम एवं कणाद आदि।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रारब्ध

दुःखों की उत्पत्ति का प्रमुख कारण प्रारब्ध कर्म है। प्रारब्ध कर्म इतने बलवान् होते है कि उनके प्रभाववश आत्मा, नित्य, निष्क्रिय, स्वतंत्र वशी एवं निर्विकार होते हुए भी विनाशशील सक्रिय, परतन्त्र, दुखी और जन्म, मृत्यु, जरा (बुढ़ापा) एवं व्याधियों से युक्त प्रतीत होती है।

इस विषय की स्पष्टता के लिए यह ध्यान में रखना चाहिए कि आत्मा का अनादिकालीन कर्मप्रवाह के कारण सूक्ष्मशरीर, कार्मण शरीर एवं भौतिक शरीर के साथ सम्बन्ध रहता है। जब एक समय (मृत्युकाल) में आत्मा भौतिक शरीर का त्याग करती है, तब यह सूक्ष्म शरीर में रहती है और कार्मण-शरीर की सहायता से प्रारब्ध कर्मों का फल भोगने के लिए नया भौतिक शरीर (जन्म) प्राप्त करती है। इस प्रकार 'पुनरपिजननं पुनरपि मरणं' अर्थात् जन्म-मृत्यु का अनवरत चक्र तब तक चलता है, जब तक कर्मप्रवाह रुक नहीं जाता। और साधना द्वारा समाधिस्थ हो जाने पर जब कर्म-प्रवाह रुक जाता है, तब संचित कर्मों का फल भोगकर आत्मा जन्म-मृत्यु के बन्धन से मुक्त हो जाता है–इसी को मोक्ष कहते हैं।

भारतीय दर्शन में कर्म के संचित, प्रारब्ध एवं क्रियमाण–ये तीन भेद माने गए हैं। किसी भी जीव या व्यक्ति के द्वारा जन्मजन्मान्तरों में किए गए समस्त कर्मों का संग्रह या भण्डार संचित कहलाता है। संचित में परस्पर विरोधी कर्मों का संग्रह होता है। अतः उन कर्मों को एक के बाद एक के क्रम से भोगना पड़ता है। इस लिए संचित कर्मों में से जितने कर्म भोगने के लिए प्राणी को यह वर्तमान जीवन मिला है–उतने कर्मों को प्रारब्ध कर्म कहते हैं। तात्पर्य यह है कि प्रारब्ध संचितकर्मों का वह भाग है, जिसके फल को भोगने के लिए वर्तमान जीवन मिला है और जिसका फल जन्म लेते ही मिलना शुरू हो चुका है तथा मृत्य पर्यन्त उसका फल मिलता रहता है। वर्तमान जीवन में जो कर्म हम कर

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

रहे हैं या करेंगे–वे सब क्रियमाण कहलाते हैं। इस प्रकार वर्तमान जीवन का जन्म, मृत्यु, जरा (बुढ़ापा) एवं व्याधि (दुःख)–ये सब प्रारब्ध कर्मों के परिणाम हैं।

कर्मवाद का सिद्धांत बतलाता है–कि कर्म करने के बाद उसका फल भोगना अनिवार्य ही नहीं अपरिहार्य भी है। क्योंकि उनका फल भोगे बिना उनका क्षय नहीं होता।[3] जन्म-मृत्यु के भवचक्र का मूल कारण कर्म ही है। कर्म करने के बाद कर्ता को अनिवार्य एवं अपरिहार्य रूप से मिलने वाला फल कर्मानुबन्ध कहलाता है और यही कर्मानुबन्ध किए हुए कर्मों की शुभता या अशुभता के अनुसार आत्मा को इष्टानिष्ट योनियों में ले जाता है।

तात्पर्य यह है कि आत्मा की स्वतंत्रता (या वशीत्व) केवल कर्म करने में है–वह चाहे जो अच्छा या बुरा कर्म करे अथवा न करे। किन्तु कर्म करने के तुरन्त बाद वह उसके अपरिहार्य फल से अनुबन्धित हो जाता है। इस प्रकार जीवात्मा कर्म करने में स्वतंत्र होते हुए भी उसका फल भोगने में स्वतन्त्र नहीं है। क्योंकि कृतकर्मों का फल भोगना उसकी नियति है।[4]

निष्क्रिय एवं निर्विकार होते हुए भी आत्मा कर्मफल या कर्मानुबन्ध से बँधने के कारण सुख-दुखों को भोगता है। वास्तविकता यह है कि आत्मा के सम्पर्क से चेतना प्राप्त कर जड़ होते हुए भी मन एवं इन्द्रियाँ समस्त कार्यों को करते हैं। यदि आत्मा इनसे सम्पर्क विच्छेद कर चेतना प्रदान न करे तो क्रियाशील मन एवं इन्द्रियाँ निष्क्रिय हो जाती हैं इसलिए मन एवं इन्द्रियों की क्रियाशीलता में आत्मा का सम्पर्क हेतु है। परिणामतः वह मन एवं इन्द्रियों के द्वारा किए गए कर्मों का आत्मा उपचार से कर्ता है और इसी कारण प्रारब्ध आदि कर्मों के फल का भोक्ता है।

---

3. "नाभुक्तं क्षीयते कर्म"।
4. "अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्।"

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यदि आत्मा को कर्ता न माना जाए, तो सुख-दुःख, गति-अगति, ज्ञान-शास्त्र, जन्म-मृत्यु और बन्धन-मोक्ष आदि की दार्शनिक संकल्पना का अस्तित्व नहीं रहेगा। अतः भारतीय दर्शन के प्रणेता एवं उपदेष्टा ऋषियों ने कर्मवाद एवं पुनर्जन्मवाद जैसे कालजयी सिद्धांतों को स्थापित करते हुए आत्मा को कर्ता माना है। यह आत्मा कर्ता तथा कृत कर्मों के फल का भोक्ता है, तो प्रारब्ध कर्म, जीवन, सुख-दुःख आदि परिणामों (फलों) का कारण स्वयं सिद्ध हो जाता है।

प्रकृति (स्वभाव)

जीवन के संकटों, कष्टों या दुःखों का दूसरा कारण मनुष्य की अपनी प्रकृति या स्वभाव है। मनुष्य की प्रकृति है जिजीविषा या जीने की इच्छा। उसका स्वभाव ही ऐसा है, कि वह जीना चाहता है। जीने की यह इच्छा उसके तन, मन, चेतन एवं अवचेतन मस्तिस्क में ही विद्यमान नहीं है, अपितु वह शरीर के प्रत्येक कोशाणु (टिश्यूज) में या कहें, कि उसके रोम-रोम में समाई हुई है।

मनुष्य की जिजीविषा या जीने की इच्छा उसको कर्म करने के लिए प्रेरित करती है और फिर मनुष्य अपनी इच्छा, अहंकार एवं आग्रह के अनुसार विविध क्रिया-कलापों को करता हुआ दुःखों के दलदल में फँस जाता है। अपनी इच्छा, अहंकार एवं आग्रह पर नियंत्रण करना मनुष्य के वश की बात नहीं है। यदि कोई व्यक्ति, इन पर नियंत्रण कर ले, तो वह अपवाद है और ऐसा व्यक्ति दुःखों से परे हो जाता है।

मनुष्य के स्वभाव की कुछ नैसर्गिक वृत्तियाँ हैं, जिनमें काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर, भय भ्रान्ति एवं द्वेष प्रमुख हैं। ये वृत्तियाँ मनुष्यमात्र में न्यूनाधिक मात्रा में पायी जाती हैं तथा वह इन पर नियंत्रण नहीं कर पाता। ये वृत्तियाँ मनुष्य के अन्तःकरण में प्रतिबिम्बित होकर उसके मन को और मन के माध्यम से उसके क्रियाकलापों को अपने रंग-रूप में ढाल लेती हैं। परिणामतः व्यक्ति अपने मन के अनुसार क्रियाकलाप करता है और इसीलिए वह जाने या अनजाने में दुःखों का शिकार हो जाता है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अपनी प्रकृति या स्वभाव के वशीभूत होकर प्राणी सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण या इनके मिले-जुले रूप वाली गतिविधियों में संलग्न रहकर कभी जाने में, कभी अनजाने में, कभी सोच-विचार कर और कभी आदतन अपने इच्छित कार्यों को करते हुए दुःखों को बुला लेता है। मनुष्य का स्वभाव, तीनों गुणों के विषय और काम-क्रोधादि वृत्तियों का मनुष्य की इच्छा से लेकर आचार तक सीधा प्रभाव पड़ता है। सामान्यतया मनुष्य इनको नियन्त्रित नहीं कर पाता। अतः मनुष्य की जीने की इच्छा जो उसका स्वभाव है, अनेक समस्याओं, संकटों और दुःखों को उत्पन्न करता है।

परिस्थिति

मानव जीवन की परिस्थिति उसके चारों ओर विद्यमान जगत है। वह जन्म से लेकर मृत्यु तक अपना पूरा जीवन इस जगत् में व्यतीत करता है। इसलिए उसके चारों ओर विद्यमान जगत जिसमें वह जीवन भर रहता है, उसकी परिस्थिति का एक मात्र सूचक है।

परिस्थिति में जगत्, उसकी परिवर्तनशीलता, उसमें विद्यमान जीव एवं पदार्थ और उनकी गतिविधियाँ सभी कुछ सन्निहित हैं। ये सब कभी-कभी मनुष्य के अनुकूल और बहुधा प्रतिकूल रहते हैं। यह अनुकूलता या प्रतिकूलता मनुष्य की इच्छा और परिस्थितियों के साथ तालमेल पर निर्भर करती है। अधिकांशतया मनुष्य परिस्थितियों के साथ तालमेल नहीं बैठा पाता। क्योंकि उसकी क्षमता से परिस्थितियों का बल गुणोत्तर अधिक होता है। वह लगभग हमेशा ही अपनी धुन में लगा रहता है और इसलिए परिस्थितियों के परिवर्तन का पूर्वानुमान न करने के कारण उनके साथ सामञ्जस्य के साधन भी नहीं जुटा पाता। परिणामतः परिस्थितियों के साथ अनुकूलता की जगह प्रतिकूलता ही उसके हाथ लगती है। संयोगवश कभी परिस्थितियों की अनुकूलता के कारण उसे सफलता मिल जाती है, तो वह फूला नहीं समाता।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

किन्तु सफलता की खुशी या सुख क्षणभंगुर होता है जो परिस्थितियों के परिवर्तन के साथ समाप्त हो जाता है।

इस विषय की स्पष्टता के लिए यह जानना आवश्यक है, कि जगत् स्वभाव से विरुद्धधर्माश्रयी है। विरुद्धधर्माश्रयी से तात्पर्य है, परस्पर विरोधी गुण-धर्मों वाले पदार्थ या घटनाओं को आश्रय देना। जैसे सुख-दुःख, मान-अपमान, हार-जीत, लाभ-हानि, जन्म-मृत्यु, दिन-रात एवं शिशिर-ग्रीष्म आदि परस्पर विरोधी होते हुए भी जगत् पर आश्रित हैं। इन विरोधियों का आश्रय होने के कारण ही जगत में गतिशीलता या परिवर्तनशीलता आती है। इस तीव्रगति से लगातार चलने वाली परिवर्तनशीलता से आम और खास कोई भी नहीं बच पाता।

जगत में विद्यमान भौतिक प्राणियों द्वारा – चाहे वह चोर, डकैत, गुण्डा, शत्रु, या अन्य व्यक्ति हो, या वह हिंसक, विषैले जीव अथवा विषाणु हों या फिर स्वार्थ, लालच, ईर्ष्या अथवा द्वेष के कारण होने वाले कष्ट हों–सब परिस्थिति जन्य कष्ट या दुःख कहलाते हैं।

काल

काल जीवन के घटनाक्रम का उसके सुख-दुःख का प्रमुख कारण है। यह काल इतना बलवान् है, कि प्रकृति एवं परिस्थितियों में भी बदलाव या परिवर्तन कर देता है। यह जीवन की सफलता या असफलता का, सुख-दुःख का, लाभ-हानि का अथवा हार-जीत आदि का मुख्य कारण है।

यदि काल को सुख-दुःखों का कारण न माना जाए, तो अवतार लेने के बाद संसार में ईश्वर की दुर्दशा का कारण निर्धारित नहीं हो सकता। राम का वनवास, सीता का परित्याग, कृष्ण का कारागार में जन्म, बाल्यावस्था में लगातार कंस के भेजे गए राक्षसों के आतंक, मसीह साहब की सूली पर चढ़कर मृत्यु, मोहम्मद साहब के नवासे की करबला के मैदान में तड़फ-तड़फ कर मृत्यु, सिख गुरूओं के

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

लाड़लों का जिन्दा दीवार में चिनवाना और राज्य छोड़ने के बाद बारह वर्षों तक भगवान् महावीर का ईट-पत्थर खाना आदि ऐसी घटनाएँ हैं–जिनका कोई तर्क संगत कारण नहीं बतलाया जा सकता। वस्तुतः इन अवतारियों का कोई पूर्वजन्म नहीं था, तो फिर संचित या प्रारब्ध कर्म भी नहीं थे। तब इनके जीवन में दुःखों का सिलसिला कैसे पैदा हुआ?इस प्रश्न का तर्क संगत उत्तर ज्योतिष शास्त्र के पास है, कि इनका समय प्रतिकूल था। जब-जब जिसका समय प्रतिकूल होता है, उसको दुःख भोगने पड़ते हैं। अतः काल सुख-दुःखों का कारण है।

काल के स्वरूप का प्रतिपादन करने वाले ऋषियों ने मेष आदि द्वादश राशियों में सूर्य और ग्रहों की गतिविधियों को काल कहा है। जैसे घड़ी के डायल पर घूमने वाली तीन सुइयों से घण्टा, मिनट एवं सेकण्ड के रूप में काल की जानकारी मिलती है–ठीक उसी प्रकार राशिचक्र की बारह राशियों में सूर्य आदि ग्रहों के परिभ्रमण से वर्ष, मास एवं दिन के रूप में समय की जानकारी मिलती है, यथा–जितने समय में सूर्य बारह राशियों का भोग करता है, उतने समय को वर्ष, जितने समय में सूर्य एक राशि का भोग करता है–उतने समय को सौर-मास तथा जितने समय में सूर्य एक अंश का भोग करता है–उतने समय को एक सौर-दिन कहते हैं।[5]

प्राच्य विद्याओं के प्रतिपादक महर्षियों एवं मनीषी चिन्तकों ने एक ऐसे शास्त्र का आविष्कार एवं विकास किया है, जो काल, उसका स्वरूप, उसके गुणधर्म, जनजीवन पर पड़ने वाले उसके प्रभाव और जीवन के घटनाक्रम के साथ उसके सम्बन्ध का पूरा-पूरा विचार कर उसको जानने एवं पहचानने के लिए सुमान्य नियमों, सिद्धांतों तथा प्रविधियों का प्रतिपादन करता है। इस लोकोपयोगी शास्त्र का नाम ज्योतिष शास्त्र है।

5. देखिए – सूर्य सिद्धान्त-मध्यमधिकार

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

3

कारण एवं उनकी भूमिका

जो कार्य या परिणाम के पहले विद्यमान हो और जिसके बिना कार्य न हो सकता हो—उसे कारण कहते हैं। जैसे धुएँ का कारण आग है, वह धुआँ उठने के पहले विद्यमान होती है और उसके बिना धुआँ नहीं होता।

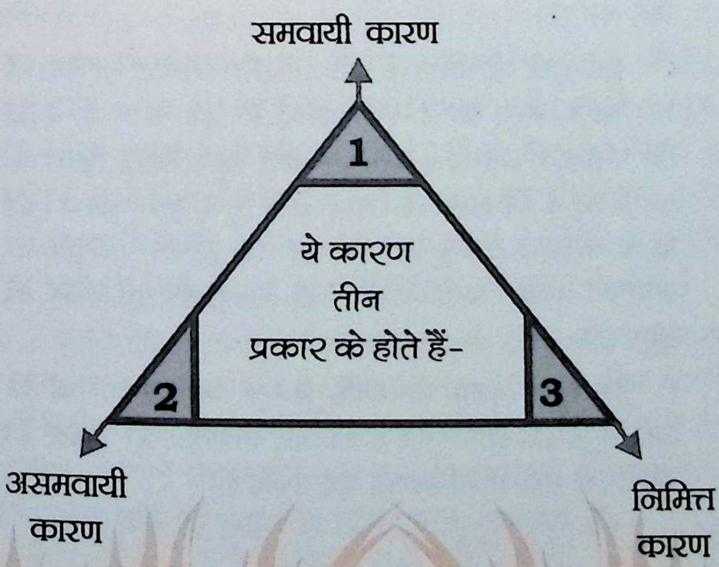

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जो कारण स्वयं कार्य के रूप में परिणत हो जाता है–वह समवायी कारण कहलाता है, जैसे घड़ा बनाने के लिए मिट्टी और कपड़ा बनाने के लिए धागा। जिस कारण के सहयोग से कार्य होता है, वह असमवायी कारण कहलाता है, जैसा घड़ा बनाने के लिए चाक एवं डण्डा आदि और कपड़ा बनाने के लिए खड्डी (लूम) एवं गिट्टक आदि तथा जो कारण कार्य की प्रक्रिया का संचालन एवं नियंत्रण करता है, वह निमित्त कारण कहलाता है, जैसा घड़ा बनाने के लिए कुम्हार और कपड़ा बनाने के लिए जुलाहा।

इस प्रकार प्रत्येक कार्य की उत्पत्ति के लिए समवायी, असमवायी एवं निमित्त–इन तीनों प्रकार के कारणों का होना आवश्यक है। इनमें से कोई भी एक विद्यमान न हो, तो कार्य नहीं हो सकता। वह जहाँ का तहाँ रुक जायेगा। जैसे मिट्टी, चाक-डण्डा, या कुम्हार में से किसी एक के न होने पर घड़ा नहीं बनेगा अथवा धागा, खड्डी-गिट्टी, या जुलाहे में से किसी भी एक के न होने पर कपड़ा नहीं बनेगा। इसलिए यह आवश्यक है, कि कार्य के पहले ये तीनों कारण विद्यमान हो तथा इनमें सही ताल-मेल हो।

सुख-दुःखों की उत्पत्ति के प्रारब्ध, प्रकृति परिस्थिति एवं काल–ये चार कारण बताए गए हैं–इनमें प्रारब्ध समवायी कारण है, प्रकृति एवं परिस्थिति असमवायी कारण है और काल निमित्त कारण हैं। तात्पर्य यह है कि प्रारब्ध कर्म का फल ही सुख-दुःख आदि है। इन प्रारब्ध कर्मों को सुख-दुःखादि परिणाम तक पहुँचाने में प्रकृति एवं परिस्थिति सहायता करती है और काल (समय) इस पूरी प्रक्रिया का सूत्रधार है।

इस प्रकार दुःखों की उत्पत्ति के इन चारों कारणों को जो चिकित्सा पद्धति जानती-पहचानती और नियन्त्रित कर सकती है। वही इनकी सही-सही चिकित्सा कर सकती है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

4

दुःखों के कारणों के निर्धारण एवं निवारण में ज्योतिष की भूमिका

मानव-जीवन समस्या एवं संकटों की सत्य-कथा है। जीवन में ऐसा कोई स्थान या क्षण नहीं जब मनुष्य के सामने समस्या या संकट चुनौती के रूप में खड़ा न हो। इसीलिए जीवन में कष्टों एवं दुःखों का सिलसिला लगातार चलता रहता है। राजा हो या रंक, पीर हो या फकीर, ज्ञानी हो या अज्ञानी, सम्पन्न हो या विपन्न, अगड़ा हो या पिछड़ा—ऐसा कोई व्यक्ति नहीं, जिसके जीवन में समस्या या संकट न आते हों।

मनुष्य अपनी पूरी शक्ति एवं बुद्धि लगाकर निश्चिन्तता, सन्तुष्टि एवं शान्ति चाहता है। किन्तु वह उसको मिलती नहीं। जीवन में सुख एवं सुविधा जुटाने के लिए हजारों-लाखों वर्षों से ज्ञान एवं विज्ञान ने भगीरथ प्रयत्न किए हैं। किन्तु इसका परिणाम क्या है? इसको आप और हम सभी जानते हैं। कोई न कोई कारण तो है ही संसार के इस मर्ज का– कि इसकी जितनी दवा की जाती है—यह बढ़ता ही जाता है।

वस्तुतः किसी भी समस्या के समाधान के लिए उसके सही-सही कारण का जानना आवश्यक है। जब तक समस्या के वास्तविक कारण का निर्धारण नहीं हो जाता तब तक उसका निवारण सम्भव नहीं है। इसलिए जीवन में उत्पन्न होने वाली समस्या एवं संकटों के समाधान के लिए उनके सही-सही कारण का विचार करना आवश्यक है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

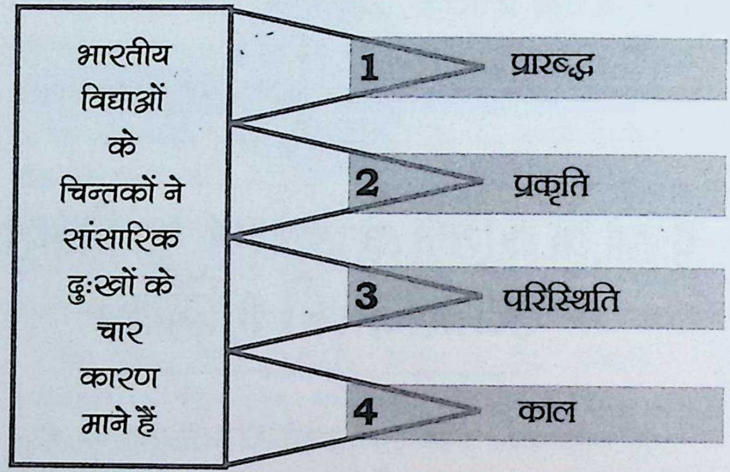

इन चारों कारणों का विचार एवं निर्धारण ज्योतिष शास्त्र द्वारा किया जाता है। वैदिक ज्योतिष में प्रतिपादित योग, दशा एवं गोचर की प्रविधि से इन कारणों तथा इनके परिणामस्वरूप जीवन में उत्पन्न होने वाले संकटों/दुःखों का पूर्वानुमान किया जाता है। इस प्रकार ज्योतिष शास्त्र जीवन की समस्या एवं संकटों को जानने तथा उनके कारणों का निर्धारण करने में हमारी सर्वाधिक सहायता करता है।

ज्योतिष शास्त्र का अतिसंक्षेप में परिचय दिया जाए, तो इस प्रकार है—कि वैदिक काल से लेकर आज तक जीवन के घटना-क्रम को काल और कर्म के परिप्रेक्ष्य में जानने—पहचानने और पूर्वानुमान करने के लिए हमारे महर्षियों एवं मनीषी आचार्यों ने जिन तर्क पूर्ण सिद्धांतों, प्रविधियों एवं पद्धतियों को नियमों और उपनियमों के अनुशासन से प्रतिबद्ध कर आविष्कृत एवं विकसित किया उनके समग्र संकलन को ज्योतिष शास्त्र कहते हैं।

यह एक ऐसी विद्या है, जिससे व्यक्ति और ब्रह्माण्ड के जीवन में कब-कब, कहाँ-कहाँ और क्या-क्या घटित होने वाला है? इस सबको भलीभाँति जाना जा सकता है। इस शास्त्र का जीवन के साथ इतना घनिष्ठ सम्बन्ध है, कि यह जीवन के सभी नकारात्मक और सकारात्मक पहलुओं का विचार कर उसके

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

बारे में सही-सही और पर्याप्त जानकारी देकर हमारी सर्वाधिक सहायता करता है। इसकी इन विशेषताओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि इस शास्त्र के ज्ञान के बिना आधुनिक ज्ञान-विज्ञान अपूर्ण ही नहीं, अपितु पंगु है।

जीवन के समस्त पक्षों का समय के पैमाने पर विचार कर उनके सही पूर्वानुमान की तकनीक बताने वाले ज्योतिष शास्त्र ने इष्ट-प्राप्ति एवं अनिष्ट परिहार के लिए पाँच प्रकार के उपाय बताए हैं। वेदांग शास्त्रों में अकेला ज्योतिष शास्त्र ही ऐसा शास्त्र है, जो अभीष्ट सिद्धि और अनिष्टों से बचाव के लिए या जीवन के सभी कष्टों के समाधान के लिए सटीक उपायों का प्रतिपादन करता है।

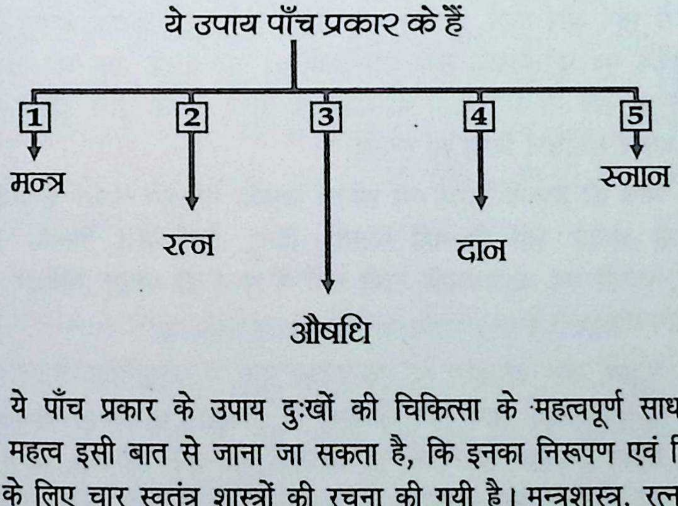

ये पाँच प्रकार के उपाय दुःखों की चिकित्सा के महत्वपूर्ण साधन हैं। इनका महत्व इसी बात से जाना जा सकता है, कि इनका निरूपण एवं विवेचन करने के लिए चार स्वतंत्र शास्त्रों की रचना की गयी है। मन्त्रशास्त्र, रत्नविज्ञान आयुर्वेद एवं धर्मशास्त्र ऐसे शास्त्र हैं, जिनमें यथाक्रमेण मन्त्र, रत्न, औषधि; दान और स्नान के समस्त शास्त्रीय पक्षों का विस्तार से वर्णन तथा विवेचन किया गया है।

इन उपायों में मन्त्र की महिमा एवं उसका प्रभाव सर्वोपरि है। अतः विश्वविद्यालयीय शिक्षा पद्धति में पुनश्चर्या पाठयूक्रम के माध्यम से जीवन की समस्या और संकटों के समाधान के सबसे विश्वसनीय साधन के रूप में मन्त्र-साधना का विचार किया जा रहा है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

5

मन्त्र एवं उसकी विश्वसनीयता

व्यक्ति, की सुप्त या लुप्त शक्ति को जागृत कर महनीय शक्ति के साथ सामञ्जस्य करने वाला गूढ़ ज्ञान मन्त्र कहलाता है। यह अपने साधकों को एक हाथ से भोग और दूसरे हाथ से मोक्ष प्रदान करता है। साधक अपनी लौकिक, अलौकिक एवं पारलौकिक सभी कामनाओं की पूर्ति इसके द्वारा कर सकता है। जीवन का कोई भी और कैसा भी संकट हो–मन्त्र साधना द्वारा उसका निश्चित और पक्का समाधान किया जा सकता है।

मन्त्र की जितनी विशद एवं सार्थक व्याख्या भारतीय तत्वज्ञ ऋषियों ने की है–वैसी अन्यत्र कहीं भी नहीं मिलती। हिन्दू, जैन, बौद्ध, सिक्ख, इस्लाम, ईसाई, पारसी एवं यहूदी आदि सभी धर्मों में मन्त्र की महत्ता निर्विवाद रूप से विद्यमान एवं मान्य है।

साधना और अध्यात्म का गूढ़ रहस्य मन्त्र में अन्तर्निहित है। यह आत्म दर्शन या ब्रह्मज्ञान के साथ-साथ लौकिक एवं लोकोत्तर कामनाओं की सिद्धि का समर्थ साधन है। यह एक ऐसी गूढ़ विद्या है जो अपने साधकों को दुःखों से मुक्त कर लौकिक सुख-सन्तुष्टि के साथ-साथ चरम और परम आनन्द के समीप ले जाती है। इष्ट-कृपा आनन्द का वह भाव है, जिसके स्पर्शमात्र से साधक का रोम-रोम पुलकित और तृप्त हो जाता है। इसके बाद सांसारिक वासनाएँ शेष न रहने के कारण साधक मुक्ति मार्ग का पथिक बन जाता है।

इस विद्या के इसी सामर्थ्य के कारण यह विश्व के सभी देशों में, सभी धर्मों के अनुयायियों में और समग्र मानव जाति में हजारों-लाखों वर्षों से यह आस्था एवं विश्वास के साथ प्रचलित है। आदिमजाति एवं जनजाति से लेकर सभ्य एवं सुशिक्षित समाज तक सभी जातियों, वर्गों, धर्मों एवं सम्प्रदाय के लोगों की इसमें श्रद्धा एवं भक्ति इसकी विश्वसनीयता का सबसे बड़ा साक्ष्य है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

6

मन्त्र की परिभाषा

मन्त्र-तन्त्र को जानने-पहचानने और हृदयंगम करने वाले ऋषियों ने इसको अपने-अपने ढंग से परिभाषित किया है। सभी धर्म, सभी सम्प्रदाय, उनके संस्थापक ऋषियों, मुनियों, आचार्यों एवं सद्गुरूओं ने अपनी-अपनी दृष्टि से मन्त्र की परिभाषाएँ दी हैं। यहाँ केवल तन्त्रागम एवं मन्त्रशास्त्र में प्रतिपादित मन्त्र की प्रमुख परिभाषाओं की चर्चा की जा रही है, जिससे मन्त्र-तत्त्व को समझने में सरलता रहेगी।

1. **"मननात् त्रायते यस्मात्तस्मान्मंत्र उदाहृतः"-**

अर्थात जिसके मनन (चिन्तन एवं ध्यान) द्वारा सांसारिक दुःखों से रक्षा, मुक्ति एवं परम-आनन्द प्राप्त होता है-वही मन्त्र है।

2. **"मन्यते ज्ञायते आत्मादि येन"-**

अर्थात् जिससे आत्मा और परमात्मा का ज्ञान (साक्षात्कार) हो-वह मन्त्र है।

3. **"मन्यते विचार्यति आत्मादेशो येन"-**

अर्थात् जिसके द्वारा आत्मा के आदेश (अन्तरात्मा की आवाज) पर विचार किया जाए-वह मन्त्र है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

4 **"मन्यन्ते सत्क्रियन्ते परमपदे स्थिताः देवताः"-**

अर्थात् — जिसके द्वारा परमपद में स्थित देवताओं का सत्कार (पूजन/हवन) किया जाए–वह मन्त्र है।

5 **"मननं विश्वविज्ञानं त्राणं संसारबन्धनात्।**
यतः करोति संसिद्धो मन्त्र इत्युत्यते ततः॥"

अर्थात् — यह ज्योतिर्मय एवं सर्वव्यापक आत्मतत्व का मनन है और यह सिद्ध होने पर रोग, शोक, दुःख, दैन्य, पाप, ताप एवं भय से रक्षा करता है–इसलिए मन्त्र कहलाता है।

6 **"मननात्तत्वरूपस्य देवस्यामिततेजसः।**
त्रायते सर्वदुःखेभ्यस्तस्मान्मन्त्र इतीरितः॥"

अर्थात् — जिससे दिव्य एवं तेजस्वी देवता के रूप का चिन्तन और समस्त दुःखों से सुरक्षा मिले–वह मन्त्र है।

7 **"मननात् त्रायते इतिमन्त्रः"-**

अर्थात् — जिसके मनन, चिन्तन एवं ध्यान से पूरी-पूरी सुरक्षा एवं सुविधा मिले–वह मन्त्र कहलाता है।

8 **"प्रयोगसमवेतार्थस्मारकाः मन्त्राः"-**

अर्थात् — अनुष्ठान एवं पुरश्चरण में पूजन, जप एवं हवन के द्रव्य एवं देवता आदि के स्मारक या अर्थ के प्रकाशक मन्त्र हैं।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(9) **"साधकसाधनसाध्यविवेकः मन्त्रः"**

अर्थात् साधना में साधक, साधन एवं साध्य का विवेक ही मन्त्र कहलाता है।

(10) **"सर्वे बीजात्मकाः वर्णाः मन्त्रा ज्ञेयाः"**

अर्थात् सभी बीजाक्षर मन्त्र होते हैं।

(11) **"मन्त्रो हि गुप्तविज्ञानः"-**

अर्थात् मन्त्र एक गुप्त विज्ञान है, जिसके गूढ़ से गूढ़ रहस्यों को मन्त्र द्वारा जाना जा सकता है।

मन्त्रतत्व को समझने और समझाने के लिए परिभाषा के माध्यम से एक लम्बा और निरन्तर प्रयास भारतीय चिन्तन धारा में दिखलाई देता है। यह विषय अपने आप में बड़ा ही गम्भीर है और इसकी थाह पाना सागर की थाह पाने के समान है। मन्त्र की उक्त परिभाषाओं के माध्यम से इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है, कि मन्त्र गूढ़आध्यात्मिक रहस्यों और दिव्यशक्ति का प्रतीक हैं तथा यह दुःखों से मुक्त करने में सक्षम हैं। मेरी राय में मन्त्र को व्यापक अर्थ में परिभाषित किया जाए, तो उसकी यह परिभाषा उचित होगी–"कि जो शब्द मन को विषयों से तार दे–वही मन्त्र है।"

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

7

मन्त्रों के भेद

सामान्यतया मन्त्र दो प्रकार के होते हैं।

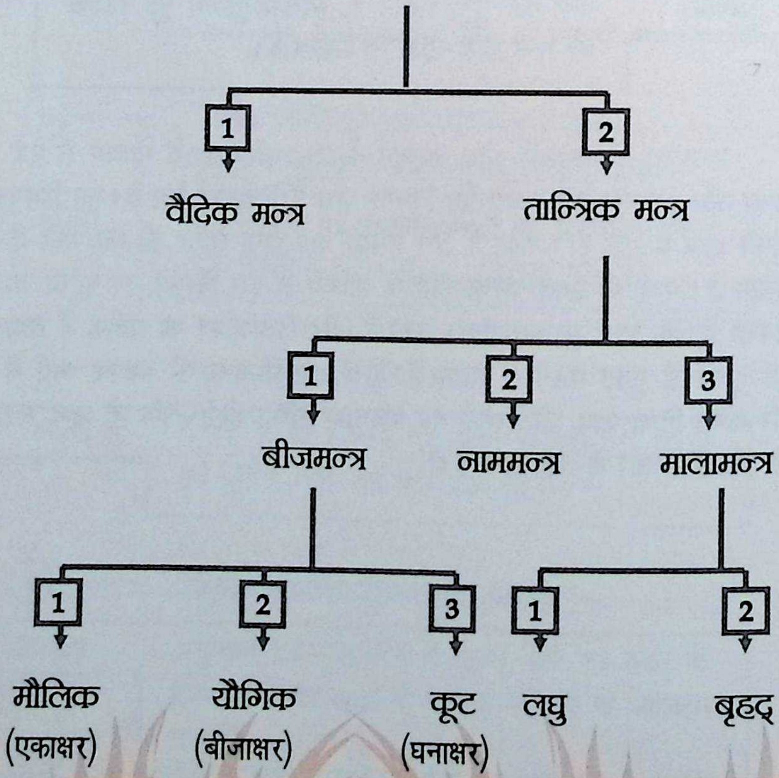

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वैदिक मन्त्र

वेदों की संहिताओं की समस्त ऋचाऐं वैदिक मन्त्र हैं।

तान्त्रिक मन्त्र

तन्त्रागमों में प्रतिपादित मन्त्र तान्त्रिकमन्त्र कहलाते हैं। तान्त्रिक मन्त्र तीन प्रकार के होते हैं–**1. बीजमन्त्र, 2. नाममन्त्र, 3. मालामन्त्र।**

एक या अनेक बीजों से युक्त मन्त्र को बीजमन्त्र और बीज रहित मन्त्र को नाममन्त्र कहते हैं। जैसे -

क्लीं कृष्णाय नमः या ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे–

ये बीजमन्त्र हैं और

नमः शिवाय या नमो नारायणाय–ये नाम मन्त्र हैं।

कुछ आचार्यों के अनुसार बीस अक्षरों से अधिक और अन्य आचार्यों के अनुसार बत्तीस अक्षरों से अधिक अक्षर वाला मन्त्र मालामन्त्र कहलाता है, यथा–

"ॐ क्लीं देवकी सुत गोविन्द वासुदेव जगत्पते।
देहि में तनयं कृष्ण त्वामहं शरणं गतः।।"

शब्द की नैसर्गिक एवं आध्यात्मिक शक्ति को अभिव्यक्ति देने वाला संकेताक्षर बीज कहलाता है। इसकी शक्ति एवं इसके रूप अनन्त हैं। अतः यह समस्त शक्ति, अनन्तरूप एवं समस्त अर्थों को अभिव्यक्ति देता है। परिणामतः यह बीज भिन्न-भिन्न देवताओं के साथ, विभिन्न धर्म एवं सम्प्रदायों की भिन्न-भिन्न साधनाओं में, विभिन्न साधकों को भिन्न-भिन्न प्रकार के रहस्यों से परिचित करवाता है।

शैव, शाक्त, वैष्णव, गाणपत्य, जैन एवं बौद्ध धर्म/सम्प्रदायों के मन्त्रों में–**"ऐं, ह्रीं, क्लीं"** आदि बीजों का समान रूप से प्रयुक्त होना इसका साक्ष्य है।[6]

---

6. देखिए–
(1) मन्त्र महोदधि
(2) मन्त्र महार्णव
(3) तन्त्रसार

जैनग्रन्थ–
(1) भैरव पद्मावती कल्प
(2) ज्वालामालिनी कल्प
(3) लघु विद्यानुवाद

बौद्धग्रन्थ
(1) क्रियातन्त्र
(2) चर्या तन्त्र
(3) योग तन्त्र

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

बीज मन्त्र की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह समस्त का वाचक एवं बोधक होने के साथ-साथ स्वयं समग्र एवं परिपूर्ण ज्ञान है। इससे दिव्य शक्ति एवं देवता के रहस्य लगातार उसी प्रकार प्रस्फुटित होते रहते हैं जैसे ज्वालामुखी में से लावा।

यह बीजमन्त्र तीन प्रकार का होता है-

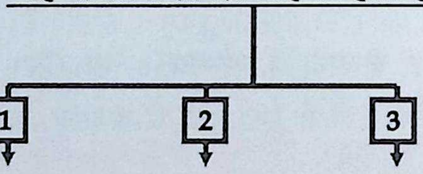

मौलिक (एकाक्षर) | **यौगिक** (बीजाक्षर) | **कूट** (घनाक्षर)

कुछ आचार्यों ने इन तीनों के नाम **1. एकाक्षर, 2. बीजाक्षर और 3. घनाक्षर** भी बताए हैं। जब बीज अपने मूल रूप में रहता है, तब यह मौलिक बीज कहलाता है, जैसे – **ऐं, गं, यं, रं, लं, वं, क्षं** आदि।

जब बीज दो वर्णों के योग से बनता है, तब वह यौगिक कहलाता है, जैसे–**ह्रीं, क्लीं, क्षौं, स्त्रीं** आदि। और जब बीज तीन या उससे अधिक वर्णों के योग से बनता है, तो वह कूट बीज कहलाता है, जैसे हस्कलीं, क्ष्म्ल्व्र्यूं आदि। ऐसे कूट बीजों के मन्त्र श्रीविद्या, जैन एवं बौद्ध मन्त्रों में अधिक मिलते हैं। बीज मन्त्रों के बारे में यह बात ध्यान में रखनी चाहिए, कि उनमें समग्र शक्ति विद्यमान होते हुए भी गुप्त रहती है। अतः उसे जगाया जाता है, जिसे मन्त्र चैतन्य कहते हैं। यह प्रक्रिया मन्त्रशास्त्र एवं सद्गुरू से जानी जा सकती है।

नाममन्त्रों में उनकी शक्ति एवं रूप गूढ़ या प्रच्छिन्न नहीं होता। इस मन्त्र के शब्द मन्त्र के देवता, उसके रूप और उसकी शक्ति को स्पष्ट अभिव्यक्ति देते हैं। जैसे –

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ॐ नमः शिवाय,

ॐ नमो नारायणाय,

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय आदि

मन्त्रों के शब्द अपने देवता, उसके रूप एवं उसकी शक्ति को स्वयं बता देते हैं।

मालामन्त्र के वर्णों की पूर्व मर्यादा बीस या बत्तीस अक्षरों से अधिक है, किन्तु उसकी उत्तर मर्यादा का मन्त्रशास्त्र में उल्लेख नहीं है। इसलिए मालामन्त्र कभी-कभी छोटे और कभी-कभी अपेक्षाकृत अधिक लम्बे होते हैं। योगिनी हृदय तन्त्र में इनके स्वरूप को ध्यान में रखकर इनके दो भेद बताए हैं – **लघु, बृहद्**

योगिनी हृदय के अनुसार 84 अक्षरों तक के मालामन्त्र लघु माने जाते हैं और इससे अधिक अक्षरवाले बृहद् मालामन्त्र कहलाते हैं।

जैसे 50 एवं 62 अक्षर के महामृत्युन्जयमन्त्र लघुमालामन्त्र हैं और दुर्गा सप्तशती के **"सावर्णिसूर्यतनयः.......से सावर्णि भवितामनुः"** तक के **700 श्लोक बृहद् मालामन्त्र हैं।**

मन्त्र साधना के रहस्य वेत्ताओं के अनुसार–

"अमन्त्रमक्षरं नास्ति नास्तिमूलमनौषधम्–"

कोई अक्षर ऐसा नहीं है, जो मन्त्र न हो और कोई वनस्पति ऐसी नहीं है, जो औषधि न हो। केवल आवश्यकता है अक्षर में निहित मन्त्र शक्ति और वनस्पति में निहित औषधि के मर्म को जानने की। जब सद्गुरू की कृपा से इस मर्म को जान लिया जाता है। तब यह

"एकः शब्दः सम्यग् ज्ञातः सुप्रयुक्तः स्वर्गे लोके च कामधुक् भवति"

–अर्थात् यह एक ही शब्द भली–भाँति जानने–पहचानने और साधन में प्रयुक्त होने के बाद कामधेनु के समान साधक की समस्त मनोकामनाओं को पूरा करता है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

8

मन्त्र साधन

सिद्धि के लिए किया जानेवाला प्रयत्न या कर्म साधना कहलाता है और उसके उपयोगी उपकरणों को साधन कहते हैं। साधन के बिना साधना की ओर प्रवृत्त होना सम्भव ही नहीं है। अतः मन्त्र साधना की विधि को जानने से पहले मन्त्र-साधन का सम्यक् ज्ञान परम आवश्यक है।

साधन के बारे में यह बात सदैव याद रखनी चाहिये कि जब वह कर्ता (या साधक) के अभीष्ट की प्राप्ति में सहायक हो, तभी वह साधन कहलाता है–अन्यथा नहीं। इसलिए जो मन्त्र और क्रियाएँ साधक का अभीष्ट सिद्ध नहीं कर सकतीं अथवा कर्ता का अनिष्ट करती हैं, उन्हें साधन नहीं कहते। यही कारण है कि मन्त्रशास्त्र में सर्वप्रथम यह विचार किया जाता है कि कौन-सा मन्त्र साधक का अभीष्ट सिद्ध करेगा? और कौन सा नहीं? इस प्रकार सही मन्त्र का चुनाव कर वह जिन-जिन क्रियाओं के करने से अभीष्टफलदायक हो जाता है–उन सब का विचार साधन-विज्ञान कहलाता है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मन्त्र एवं आगम ग्रन्थों में मन्त्र को साधन या अभीष्टफलदायक बनाने के लिए निम्नलिखित बातों पर विशेष ध्यान दिया जाता है–

1	मन्त्र मेलापक	2	मन्त्रार्थ
3	मन्त्र चैतन्य	4	मन्त्रों की कुल्लिका
5	मन्त्रसेतु	6	महासेतु
7	निर्वाण	8	मुखशोधन
9	प्राण योग	10	दीपिनी
11	मन्त्र के सूतक	12	मन्त्र के दोष और
13	दोष निवृत्ति के उपाय।		

इन 13 बातों की सम्यक् जानकारी एवं इनका सही-सही उपयोग करने से मन्त्र साधन बनकर अभीष्ट सिद्धि देता है – अन्यथा यह साधक का सबसे बड़ा शत्रु बनकर उसका नाश भी कर देता है[7]।

मन्त्र मेलापक

जैसे विवाह निश्चित करने से पहले वर-वधू के अष्टकूटों का विचार कर मेलापक मिलाया जाता है और इस मेलापक के माध्यम से उपयुक्त वर एवं वधू का चुनाव किया जाता है। उसी प्रकार मन्त्र दीक्षा से पूर्व साधक और मन्त्र (साधन) का मेलापक मिलाया जाता है। इस मेलापक के माध्यम से साधक के लिए कौन-सा मन्त्र सर्वथा उपयुक्त रहेगा? यह निर्णय किया जाता है।

मन्त्र शास्त्र में मेलापक की चर्चा विस्तार से की गयी है। मन्त्रशास्त्र का स्पष्ट मत है, कि मेलापक की विधि से सिद्धादि शोधन के बाद ही उपयुक्त मन्त्र का अनुष्ठान करना चाहिए। अन्यथा साधक दुर्धर्ष विघ्नों का शिकार हो सकता है और कभी-कभी सिद्धि के स्थान पर जीवन संकट में पड़ सकता है[8]।

---

7. साधकं नाशयेन्मत्रः नास्ति मन्त्रसमो रिपुः।। -योगिनीहृदयतन्त्र
8. मन्त्र महोदधि - 24 तरंग।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

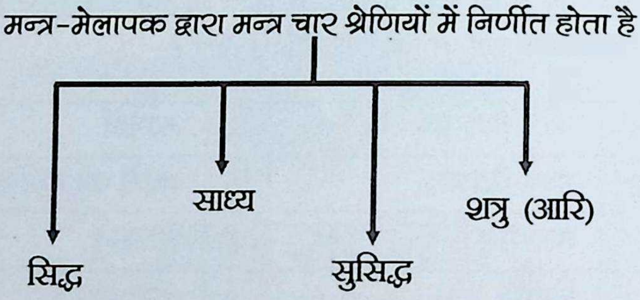

इसलिए मन्त्र-मेलापक को सिद्धादि शोधन भी कहते हैं। सिद्ध श्रेणी का मन्त्र सामान्य प्रयास से, साध्य श्रेणी का मन्त्र अधिक समय और प्रयास से तथा सुसिद्ध श्रेणी का मन्त्र अल्प प्रयास से सिद्ध हो जाता है। किन्तु शत्रु या अरि श्रेणी का मन्त्र साधना करने पर सिद्ध ही नहीं होता अपितु , साधक के जीवन में अनेक हानि एवं परेशानी पैदा करता है। अतः साधक को चाहिए कि वह सिद्धादि शोधन कर सिद्ध एवं सुसिद्ध मन्त्रों को ग्रहण करे और साध्य एवं शत्रुमन्त्र का परित्याग करे[9]।

मन्त्र का साधक के साथ मेलापक मिलाने या सिद्धादि शोधन के लिए इस शास्त्र में पाँच चक्रों का उपयोग किया जाता है –

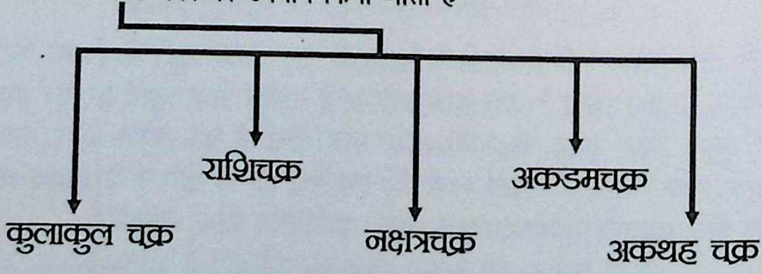

इसके अतिरिक्त ऋणी-धनीचक्र द्वारा साधक एवं मन्त्र के ऋणानुबन्ध का विचार होता है।

इस प्रसंग में यह सदैव याद रखना चाहिए, कि मन्त्र से बड़ा साधक का कोई दूसरा शत्रु नहीं है[10]। क्योंकि यदि उसका सिद्धादि शोधन न किया जाए या

9. तत्रैव
10. "नास्ति मन्त्रसमो रिपुः।"

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उसके उच्चारण में त्रुटि हो जाए अथवा उसके प्रयोग की विधि में भूलचूक हो जाए, तो वह वाक्वज्र बन कर साधक को मार भी सकता है[11]। अतः मन्त्रदीक्षा एवं मन्त्रसाधना से पूर्व सिद्धादिशोधन करना आवश्यक है।

कुलाकुलचक्र

पाँच कोष्ठकों का एक चक्र लिखकर उसके ऊपर की पंक्ति में क्रमशः वायु, अग्नि, भूमि, जल एवं आकाश – इन पञ्चमहाभूतों के नाम लिखने चाहिए। फिर इनके नीचे अकार से अनुस्वार तक और ककार से हकार तक स्वर-वर्णों को स्थापित करना चाहिए। स्वरों में विसर्ग (अः) का परित्याग इसलिए किया गया है, क्योंकि वह साधक या मन्त्र के प्रारम्भ में नहीं होता।

कुलाकुलचक्र

वायु	अग्नि	भूमि	जल	आकाश
अ आ	इ ई	उ ऊ	ऋ ॠ	ऌ ॡ
ए	ऐ	ओ	औ	अं
क	ख	ग	घ	ङ
च	छ	ज	झ	ञ
ट	ठ	ड	ढ	ण
त	थ	द	ध	न
प	फ	ब	भ	म
य	र	ल	व	श
ष	क्ष	ळ	स	ह

इस चक्र में वायु आदि भूतों के नीचे जो अक्षर पड़ते हैं, वे एक दैवत हैं या एक कुल के हैं। यदि साधक के नाम का प्रथम अक्षर और मन्त्र का प्रथम अक्षर एक ही कोष्ठक में हो, तो वह मन्त्र अपने कुल का मन्त्र होता है। ऐसा मन्त्र ग्रहण करना चाहिए।

11. "स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति।"

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यदि साधक के नाम का प्रथम अक्षर और मन्त्र का प्रथम अक्षर एक कोष्ठ में न पड़े अर्थात् वे दो भिन्न-भिन्न कोष्ठों में हों, तो मित्र कुल का मन्त्र ग्रहण करना चाहिए। इस प्रसंग में यह विशेष रुप से ध्यान में रखना चाहिए कि आकाश सभी भूतों का मित्र है अर्थात् कोई भूत उसका शत्रु नहीं है। जल एवं भूमि परस्पर मित्र हैं तथा वायु एवं अग्नि आपस में मित्र हैं। किन्तु वायु एवं भूमि परस्पर शत्रु हैं और अग्नि, जल एवं भूमि आपस में एक दूसरें के शत्रु हैं।

उदाहरण

उदाहरणार्थ देवदत्त को 'ऐं' मन्त्र की साधना करनी है। कुलाकुलचक्र में देवदत्त के नाम का प्रथम अक्षर 'द' भूमितत्व के नीचे और मन्त्र का प्रथम अक्षर 'ऐ' अग्नि तत्व के नीचे है। भूमि एवं अग्नि परस्पर शत्रु हैं। अतः देवदत्त के लिए 'ऐं' मन्त्र शत्रुकुल है। इसलिए यह त्याज्य है।

यदि देवदत्त 'ह्रीं' मन्त्र की साधना करना चाहे, तो उसके नाम का प्रथम अक्षर भूमि तत्व के नीचे और मन्त्र का प्रथम अक्षर 'ह' आकाश तत्व के नीचे पड़ता है। भूमि एवं आकाश मित्र हैं। अतः देवदत्त के लिए 'ह्रीं' मन्त्र मित्रकुल का होने से वह इसकी साधना कर सकता है।

राशिचक्र

बारह कोष्ठकों का एक चक्र लिखकर उसमें मेषादि द्वादश राशियाँ तथा स्वर-वर्णों को इस प्रकार लिखना चाहिए–

मेष के साथ	⇨	अ, आ, इ, ई,
वृष के साथ	⇨	उ, ऊ, ऋ,
मिथुन के साथ	⇨	ॠ, ऌ, ॡ,
कर्क के साथ	⇨	ए, ऐ,
सिंह के साथ	⇨	ओ, औ,
कन्या के साथ	⇨	अं, अः, श, ष, स, ह, ळ एवं क्ष,

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तुला के साथ	⇨	क, ख, ग, घ, ङ,
वृश्चिक के साथ	⇨	च, छ, ज, झ, ञ,
धनु के साथ	⇨	ट, ठ, ड, ढ़, ण
मकर के साथ	⇨	त, थ, द, ध, न,
कुम्भ के साथ	⇨	प, फ, ब, भ, म और
मीन के साथ	⇨	य, र, ल एवं व लिखना चाहिए

राशिचक्र

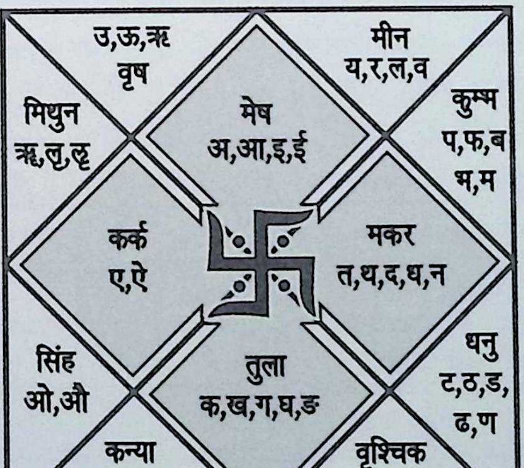

साधक एवं मन्त्र के प्रथम अक्षर के अनुसार राशि चक्र के आधार पर दोनों की राशियाँ निश्चित कर लेनी चाहिए। फिर साधक की राशि से मन्त्र की राशि तक गणना करनी चाहिए। यदि साधक की राशि से मन्त्र की राशि प्रथम, पंचम या नवम हो, तो मित्र, द्वितीय, षष्ठ या दशम हो तो हितकर, तृतीय, सप्तम या एकादश हो तो पुष्टिकर और चतुर्थ, अष्टम या द्वादश हो तो घातक होती है। कुछ आचार्यों के अनुसार साधक की राशि से मन्त्र की राशि षष्ठ हो, तो वह नेष्ट होती है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उदाहरण

उदाहरणार्थ देवदत्त को 'ऐं' या 'ह्रीं' मन्त्र की साधना करनी है। राशिचक्र के अनुसार देवदत्त की मकर, 'ऐं' की कर्क और 'ह्रीं' की कन्या राशि है।

देवदत्त की राशि से 'ऐं' मन्त्र की राशि सातवीं होने से पुष्टिकर और देवदत्त की राशि से 'ह्री' मन्त्र की राशि नौवीं होने से मित्रराशि है। अतः राशिचक्र के अनुसार देवदत्त 'ऐं' एवं 'ह्रीं' दोनों मन्त्रों की साधना कर सकता है।

नक्षत्र चक्र

नक्षत्र चक्र के अनुसार गण एवं तारा के आधार पर साधक एवं मन्त्र के मेलापक का विचार किया जाता है। एक सत्ताईस कोष्ठक का चक्र लिखकर उसमें अश्विनी आदि 27 नक्षत्र लिखने चाहिए फिर उसमें स्वर-वर्णों तथा देव, मनुष्य एवं राक्षसगण की मन्त्रशास्त्र के अनुसार स्थापना करनी चाहिए[12]।

अश्वि.	भर.	कृति.	रोहि.	मृग.	आर्द्रा	पुन.	पुष्य	आश्ले.	नक्षत्र
देव	मनुष्य	राक्षस	मनुष्य	देव	मनुष्य	देव	देव	राक्षस	गण
अआ	इ	ईउऊ	ऋॠऌॡ	ए	ऐ	ओऔ	क	खग	अक्षर
मघा	पू.फा	उ.फा	हस्त	चित्रा	स्वाति	विशा.	अनु.	ज्येष्ठा	नक्षत्र
राक्षस	मनुष्य	मनुष्य	देव	राक्षस	देव	राक्षस	देव	राक्षस	गण
घङ	च	छज	झञ	टठ	ड	ढण	तथद	ध	अक्षर
मूल	पू.षा.	उ.षा.	श्रव.	धनि.	शत.	पू.भा.	उ.भा.	रेव.	नक्षत्र
राक्षस	मनुष्य	मनुष्य	देव	राक्षस	राक्षस	मनुष्य	मनुष्य	देव	गण
नपफ	ब	भ	म	यर	ल	वश	षसह	अंअः ळक्ष	अक्षर

12. विस्तृत जानकारी हेतु देखिए- मन्त्र महोदधि- प्रथम तरङ 24 पृ0 740 (इंडिका पब्लिशर्स द्वारा प्रकाशित)

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

साधक के नाम एवं मन्त्र के प्रथम अक्षर के अनुसार दोनों का गण निश्चित करना चाहिए। यदि दोनों का गण समान हो तो मन्त्र साधना के लिए श्रेष्ठ होता है। मनुष्य के लिए देवगण उत्तम है और देवगण के लिए मनुष्य मध्यम है। दोनों के लिए राक्षसगण शत्रु है। शत्रुगण का मन्त्र त्याज्य होता है।

नक्षत्र चक्र के अनुसार साधक के नाम के और मन्त्र के प्रथम अक्षर के आधार पर दोनों के नक्षत्र निश्चित कर लेने चाहिए। तत्पश्चात् साधक के नक्षत्र से मन्त्र के नक्षत्र तक गणना कर उनकी संज्ञा, जन्म, सम्पत्, विपत्, क्षेम, प्रत्यरि, साधक, वध, मित्र एवं परममित्र समझनी चाहिए। यदि मन्त्र का नक्षत्र इतनी संख्या में न आवे तो दुबारा और तिबारा गिन लेना चाहिए। इन संज्ञाओं में विपत्, प्रत्यरि एवं वध अर्थात् 3, 5 एवं 7वीं संख्या त्याज्य होती है।

उदाहरण

देवदत्त को 'ऐं' एवं 'ह्रीं' मन्त्र की साधना करनी है। नक्षत्र चक्र के अनुसार देवदत्त का गण देव, 'ऐं' मन्त्र का मनुष्य और 'ह्री' मन्त्र का गण भी मनुष्य है। अतः ये दोनों मन्त्र देवदत्त को मध्यम फलदायक हैं।

देवदत्त का इस चक्र के अनुसार अनुराधा नक्षत्र है, 'ऐं' मन्त्र का आर्द्रा और 'ह्री' मन्त्र का उत्तरा-भाद्रपद नक्षत्र है। देवदत्त के नक्षत्र से गणना करने पर 'ऐं' का नक्षत्र 17वां अर्थात् जन्म और 'ह्रीं' मन्त्र का नक्षत्र 10वां अर्थात् सम्पत् संज्ञक है। अतः देवदत्त इन दोनों मन्त्रों की साधना कर सकता है।

अकडम चक्र

बारह कोष्ठकों का एक चक्र लिखकर उसमें नपुंसक स्वरों (ऋ, ॠ, ऌ एवं ॡ) को छोड़कर शेष स्वर तथा 'क' से लेकर 'ह' तक वर्णों को दक्षिणावर्त क्रम से लिखना चाहिए। इस चक्र के प्रथम कोष्ठक में 'अकडम'–ये चार अक्षर पड़ते हैं। इसलिए यह अकडम चक्र कहलाता है।

इस चक्र में साधक के नाम के प्रथम अक्षर से मन्त्र के प्रथम अक्षर तक दक्षिणावर्त क्रम से गणना की जाती है और गणना के क्रमानुसार मन्त्र की–सिद्धि, साध्य, सुसिद्ध एवं अरि (शत्रु) संज्ञा होती है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तात्पर्य यह है कि साधक के नाम के प्रथमाक्षर से मन्त्र का प्रथमाक्षर पहले कोष्ठक में हो तो मन्त्र सिद्ध संज्ञक, दूसरे में हो तो साध्य संज्ञक, तीसरे में हो तो सुसिद्ध संज्ञक और चौथे कोष्ठक में हो तो अरि या शत्रु संज्ञक होता है। इसी क्रम से आगे गणना कर सिद्ध आदि संज्ञाओं का निश्चय करना चाहिए।

सिद्ध मन्त्र अपने निर्धारित समय और संख्या में सिद्ध हो जाता है। साध्य मन्त्र अधिक जप हवन एवं पूजन करने पर सिद्ध होता है। सुसिद्ध मन्त्र दीक्षा मात्र से सिद्ध हो जाता है। जब कि अरि मन्त्र साधक का नाश कर देता है[13]।

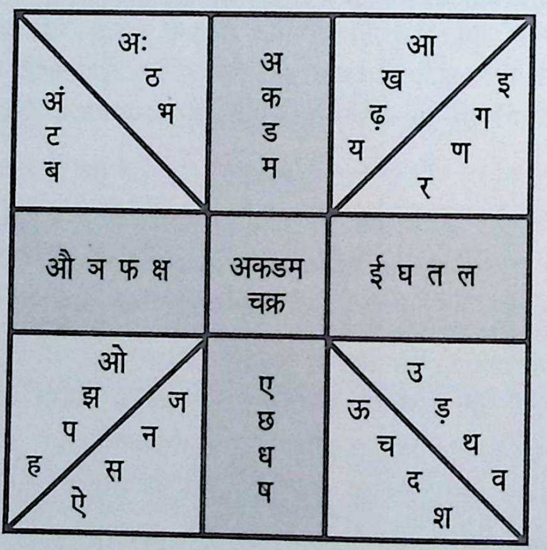

उदाहरण

देवदत्त को 'ऐं' या 'ह्रीं' मन्त्र की साधना करनी है। इन मन्त्रों का सिद्धादि शोधक करने के लिए देवदत्त के नाम प्रथमाक्षर 'द' से 'ऐं' मन्त्र तक अकडम चक्र के अनुसार दक्षिणावर्त गणना करने पर तीसरे कोष्ठ में मिलता है। अतः देवदत्त के लिए 'ऐं' मन्त्र सुसिद्ध है। देवदत्त के नाम के प्रथमाक्षर से 'ह्री' मन्त्र का प्रथमाक्षर उक्त चक्र में चौथे कोष्ठ में पड़ता है। अतः देवदत्त के लिए 'ह्री' मन्त्र अरिमन्त्र होने के कारण त्याज्य है।

13. "सिद्धः सिध्यति कालेन साध्यस्तु जपहोमतः।
सुसिद्धः प्राप्तिमात्रेण साधकं भक्षयेदरिः"।। —मन्त्रमहोदधि श्लो. 23 तरंग 24

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अकथह चक्र

सिद्धादि शोधन के लिए दूसरा चक्र अकथह चक्र है। यह सोलह कोष्ठकों का चक्र इस प्रकार बनता है–

1 अ क थ ह	2 उ ङ प	3 आ ख द	4 ऊ च फ
5 ओ ड व	6 लृ झ म	7 औ ढ श	8 लॄ ञ य
9 ई घ न	10 ॠ ज भ	11 इ ग ध	12 ऋ छ ब
13 अः त स	14 ऐ ठ ल	15 अं ण ष	16 ए ट र

इस चक्र में साधक के नाम के पहले अक्षर से मन्त्र के पहले अक्षर तक गणना करनी है। यदि मन्त्र का प्रथमाक्षर पहले खाने में हो तो मन्त्र सिद्ध, दूसरे में हो, तो साध्य, तीसरे में हो तो सुसिद्ध और चौथे खाने में हो तो मन्त्र अरि होता है। इस प्रकार जब तक मन्त्र का प्रथमाक्षर न मिले तो गिनते जाना चाहिए।

उदाहरण

उदाहरणार्थ – देवदत्त को 'ऐं' तथा 'ह्रीं' मन्त्रों की साधना करनी है। उक्त चक्र में देवदत्त के नाम के प्रथम अक्षर से 'ऐं' मन्त्र का प्रथम अक्षर 12वें खाने में हैं। अतः सिद्ध आदि गणना से 'ऐं' मन्त्र देवदत्त के लिए अरिमन्त्र होने से त्याज्य है। इस चक्र में देवदत्त के नाम के प्रथमाक्षर से 'ह्रीं' मन्त्र का प्रथमाक्षर 'ह' 15वें खाने में हैं। अतः सिद्ध आदि गणना के अनुसार 'ह्रीं' मन्त्र देवदत्त के लिए सुसिद्ध मन्त्र है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ऋणी-धनी चक्र

मन्त्र–मेलापक की प्रक्रिया में जन्मान्तर के ऋृणानुबन्ध का विचार ऋृणी-धनी चक्र से होता है। तात्पर्य यह है कि कौन-सा मन्त्र जन्म–जन्मान्तरों के कर्मानुसार हमारा ऋृणी है?या हम किस मन्त्र के ऋृणी हैं?इसका निश्चय इस चक्र से होता है। यदि मन्त्र ऋृणी हो तो वह शीघ्र सिद्ध होता है और यदि साधक ऋृणी हो तो वह उस मन्त्र की साधना से अपना ऋृण चुकाता है। किन्तु उसको सिद्धि नहीं मिलती।

इस चक्र का निर्माण करने के लिए 66 कोष्ठों वाला एक चक्र लिखकर उसके ऊपर के खानों में 14, 27, 2, 12, 15, 6, 4, 3, 5, 8 एवं 9 तथा नीचे के खानों में क्रमशः 10, 1, 7, 4, 8, 3, 7, 5, 4, 1 एवं 7 और बीच के कोष्ठकों में आ, ई, ऊ, ॠ एवं ॡ, को छोड़कर 11 स्वर एवं 33 व्यंजन लिखने चाहिए, यथा–

ऋणी-धनी चक्र

14	27	2	12	15	6	4	3	5	8	9	मन्त्रांक
अ	इ	उ	ऋ	लृ	ए	ऐ	ओ	औ	अं	अः	स्वर
क	ख	ग	घ	ङ	च	छ	ज	झ	ञ	ट	व्यंजन
ठ	ड	ढ़	ण	त	थ	द	ध	न	प	फ	व्यंजन
ब	भ	म	य	र	ल	व	श	ष	स	ह	व्यंजन

मन्त्र के स्वर-व्यञ्जनों को अलग-अलग कर ऊपर के कोष्ठक से उनके अंक लेकर उनका योग कर आठ का भाग देना चाहिए। इस प्रकार शेष मन्त्र राशि कहलाता है। इसी प्रकार साधक के नाम के स्वर-व्यञ्जनों को अलग कर नीचे के कोष्ठकों से अंक लेकर उनके योग में आठ का भाग देने से शेष नाम राशि कहलाता है। इन दोनों में से जो अधिक हो वह ऋृणी और जो कम हो वह धनी कहा जाता है। यदि मन्त्र राशि ऋृणी हो तो मन्त्र ग्रहण करना चाहिए और यदि वह धनी हो तो नहीं।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उदाहरण

मान लीजिए देवदत्त को

"ऐं नमः भगवति वद वद वाग्देवि स्वाहा"–

यह मन्त्र ग्रहण करना है–

नामाक्षरों के अंक

द्=7, ए=3, व=7, अ=10, द्=7,
अ=10, त्=8, त्=8, अ=10 योग=70।

मन्त्राक्षरों के अंक

ऐ=4, अं=8, न्=5, अ=14, म्=2,अः=9, व्=4, अ=14, द्=4, अ=14, व=4, अ=14, द्=4, अ=14, व्=4, आ=14, ग्=2, द्=4, ए=6, व्=4, इ=27, स्=8, व्=4, आ=14, ह्=9, आ=14 योग=224।

यहाँ नामाक्षर के अंकों 70 में 8 का भाग देने से 6 शेष बचता है और मन्त्राक्षरों के अंकों 224 में 8 का भाग देने से 0 शून्य अर्थात् 8 शेष बचता है। इस प्रकार नाम राशि से मन्त्र राशि अधिक होने के कारण यह मन्त्र देवदत्त का ऋणी है। अतः यह ग्रहण योग्य है।

मन्त्र मेलापक का अपवाद

शास्त्र में प्रत्येक नियम का अपवाद होता है। इसी प्रकार मन्त्र मेलापक के भी कुछ अपवाद होते हैं, यथा– जो मन्त्र स्वप्न में प्राप्त हो, स्त्री गुरू ने जिसकी दीक्षा दी हो, जो मन्त्र बीस अक्षर से अधिक का हो, जिसमें तीन ही अक्षर हों और जितने भी वैदिक मन्त्र हैं–उनमें सिद्धादि शोधन की आवश्यकता नहीं होती। इसी प्रकार हंसमन्त्र, अष्टाक्षर मन्त्र पञ्चाक्षर मन्त्र और एक, दो या तीन बीज रूप मन्त्रों में भी सिद्धादि शोधन नहीं किया जाता[14]।

---

14. "स्वप्नलब्धे स्त्रियादत्ते मालामन्त्रे च त्र्यक्षरे।
वैदिकेषु च सर्वेषु सिद्धादीन्नैव शोधयेत्।।
हंसस्याष्टाक्षरस्यापि तथा पञ्चाक्षरस्यच।
एक द्वित्र्यादिबीजस्य सिद्धादीन्नैव शोधयेत्।।"

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

त्रैलोक्य सम्मोहन तन्त्र में गोपाल मन्त्रों में सिद्धादि शोधन का निषेध किया गया है, यथा–

"न चात्र शात्रवा दोषा न स्वर्णादिविचारणा।
ऋक्षराशिविचारो वा न कर्तव्यो मनौ प्रिये।।"

अर्थात् - गोपालमन्त्र में अरि दोष नहीं होता, ऋणी धनी का विचार भी नहीं होता और नक्षत्र चक्र एवं राशि चक्र का विचार भी नहीं करना चाहिए।

ब्रहद्गौतमीय तन्त्र में सामान्यतया सभी श्रीकृष्ण मन्त्रों में सिद्धादि विचार को अनावश्यक बताया गया है, यथा–

"नात्र चिन्त्योऽरिशुध्द्यादिर्नारिमित्रादिलक्षणम्।
न वा प्रयासबाहुल्यं साधने न परिश्रमः।।
सिद्धसाध्यसुसिद्धारिरूपा नात्र विचारणा।।"

अर्थात् - श्री कृष्ण मन्त्रों में सिद्ध, साध्य, सुसिद्ध एवं अरि आदि का विचार नहीं करना चाहिए।

इसी प्रकार दश महाविद्या एवं सिद्धविद्या आदि के सम्बन्ध में भी वचन मिलते हैं। किन्तु इस विषय में यह ध्यान रखना चाहिए कि मन्त्रों के विचार का सन्दर्भ अलग है और उनकी प्रशंसा या महिमा का प्रसंग अलग है। अतः जहाँ मन्त्रों के विचार का सन्दर्भ हो वहाँ उनका शास्त्रीय रीति से विचार करना चाहिए। और जहाँ उनकी प्रशंसा या महिमा का प्रकरण हो, वहाँ उनमें श्रद्धा एवं विश्वास को परिपूर्णता की ओर ले जाना चाहिए। तात्पर्य यह है महिमा के वशीभूत होकर मन्त्रों के शास्त्रीय विचारों का परित्याग नहीं करना चाहिए। ऐसा करने से अन्धविश्वास पनपता है, जो साधक को कभी भी लाभदायक नहीं होता। सुविचारित मन्त्र की साधना पूरी श्रद्धा एवं विश्वास के साथ करनी चाहिए। तात्पर्य यह है कि मन्त्रों के विचार के समय शास्त्रीय नियमों को और साधना के समय उनकी महिमा को प्रमुखता देनी उचित है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मन्त्रार्थ

मन्त्र कोई साधरण शब्द नहीं है। वह दिव्य-शक्ति का वाचक एवं बोधक है। दिव्य होते हुए भी उसका एक वाच्यार्थ होता है। वह इष्टदेव से अभिन्न होने पर भी इष्टदेव के स्वरूप का बोध कराता है।

मन्त्र जिस शक्ति, जिस रूप का और जिस तत्व का संकेत करता है, वह जिस लक्ष्य तक साधक को ले जाना चाहता है–यदि उसकी जानकारी साधक को हो जाए, तो साधक को मन्त्र-साधना में अधिक सुविधा हो जाती है। यही कारण है कि शास्त्र ने मन्त्रजप के लिए अर्थज्ञान को आवश्यक ही नहीं अनिवार्य बताया है। मन्त्र शास्त्र में मन्त्रार्थ की भावना ही जप कहलाता है।

वस्तुतः मन्त्र के विभिन्न अक्षर उसकी विभिन्न शक्तियों के रूप हैं। इनमें से प्रत्येक की स्वतन्त्र शक्ति है। यह समग्र शक्ति मिलकर एक देवता के स्वरूप का संकेत देती है। मन्त्र की शक्ति इतनी बलवान् होती है कि यह व्यक्त एवं अव्यक्त जगत् को अपने वश में रखने वाले देवताओं को भी अपने वशीभूत कर लेती है।[15]

मन्त्र समस्त अर्थों का वाचक एवं बोधक होता है–ऐसा कोई अर्थ नहीं जो इसकी परिधि में न आता हो। जैसे इसकी शक्ति एवं रूप अनन्त हैं, वैसे ही इसके अर्थ भी अनन्त हैं। इन समस्त अर्थों को मन्त्र-शास्त्र में छः वर्गों में वर्गीकृत किया गया है। वस्तुतः ये वर्ग उन अर्थों को जानने की प्रक्रिया हैं। इस तरह मन्त्र के अर्थ छः प्रकार के होते हैं–

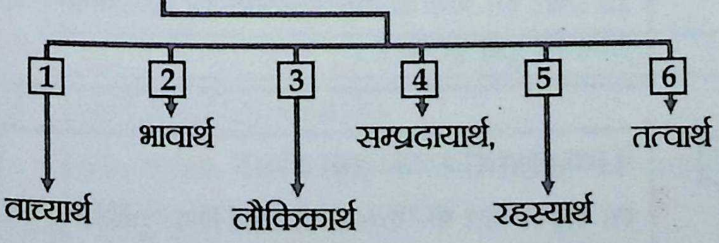

इनके भेदों, उपभेदों और अवान्तर भेदों की संख्या अपरिमित है।

15. "देवाधीनं जगत्सर्वं मन्त्राधीनाश्च देवताः।"

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इन छः भेदों में से वाच्यार्थ को छोड़कर अन्य पाँच भेदों और उनके अवान्तर भेदों का अर्थ गुरूकृपा एवं साधनागम्य है। जैसे-जैसे साधक की साधना का स्तर उन्नत होता है और उस पर इष्टदेव एवं गुरूदेव का वात्सल्य बढ़ता है–मन्त्र के अन्य अर्थों का बोध होने लगता है। मन्त्र के वाच्यार्थ का प्रतिपादन करने में मन्त्रशास्त्र सक्षम है। किन्तु उसके अन्य अर्थों को गुरूदेव की कृपा एवं साधना द्वारा ही जाना जा सकता है।

'मन्त्र' शब्द का धातुगत अर्थ है–गुप्त परिभाषण। किन्तु वह साधक के लिए गुप्त नहीं प्रकट होना चाहिए। इसलिए पूज्य गुरूदेव की कृपा से प्रमुख बीज मन्त्रों का अर्थ प्रकट किया जा रहा है–

1

ह्रीं (माया बीज)

इस माया बीज में– ह=शिव, र=प्रकृति, ई=महामाया, नाद=विश्वमाता, एवं बिन्दु=दुःख हरण।

इस प्रकार इस बीज का अर्थ है– शिवयुक्त विश्वमाता महामाया शक्ति मेरे दुःखों को दूर करें।

2

श्रीं (श्रीबीज/लक्ष्मीबीज)

इस श्रींबीज में– श=महालक्ष्मी, र=धनसम्पत्ति, ई=महामाया, नाद=विश्वमाता एवं बिन्दु=दुःखहरण।

इस प्रकार इस बीज का अर्थ है–धनसम्पत्ति की अधिष्ठात्री माँ लक्ष्मी मेरे दुःख दूर करें।

3

ऐं (वाग्भवबीज/सारस्वत बीज)

इस वाग्भव बीज में– ऐ=सरस्वती और बिन्दु=दुःखहरण।

इस प्रकार इस बीज का अर्थ है–देवी सरस्वती मेरे दुःख दूर करें।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

4

क्लीं (कामबीज/कृष्ण बीज)

इस कामबीज में– क=कृष्ण या योगमाया, ल=दिव्य, ई=महामाया एवं बिन्दु=दुःखहरण।

इस प्रकार इस कृष्ण बीज का अर्थ है– योगीराज श्री कृष्ण मेरे दुःख दूर करें और काम-बीज का अर्थ है–राजराजेश्वरी योगमाया मेरे दुःख दूर करें।

5

क्रीं (कालीबीज/कर्पूरबीज)

इस काली बीज में – क=काली, र=ब्रह्म, ई=महामाया, नाद=विश्वमाता एवं बिन्दु=दुःखहरण।

इस प्रकार इस बीज का अर्थ है – ब्रह्मशक्तिस्वरूपा महामाया काली माँ मेरे दुःख दूर करें।

6

दूं (दुर्गाबीज)

इस दुर्गाबीज में– द=दुर्गतिनाशिनी या दुर्गा, ऊ=सुरक्षा एवं बिन्दु=दुःखहरण।

इस प्रकार इस बीज का अर्थ है–दुर्गतिनाशिनी दुर्गा मेरी रक्षा करें और मेरे दुःख दूर करें।

7

स्त्रीं (वधूबीज/ताराबीज)

इस वधूबीज में– स=दुर्गा, त=तारा, र=ब्रह्म, ई=महामाया, नाद=विश्वमाता एवं बिन्दु=दुःखहरण।

इस प्रकार इस बीज का अर्थ है– ब्रह्मस्वरूपा महामाया तारा मेरे दुःख दूर करें।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

8

हौं (प्रासाद बीज)

इस प्रासाद बीज में- ह=शिव, औ=सदाशिव एवं बिन्दु=दुःखहरण।

इस प्रकार इस बीज का अर्थ है- भगवान् शिव एवं सदाशिव मेरे दुःखों को दूर करें।

9

हूं (वर्मबीज/कूर्च बीज)

इस वर्म बीज में- ह=शिव, ऊ=भैरव, नाद=सर्वोत्कृष्ट, बिन्दु=दुःखहरण।

इस प्रकार इस बीज का अर्थ है- असुर भयंकर एवं सर्वश्रेष्ठ भगवान् शिव मेरे दुःख दूर करें।

10

गं (गणपति बीज)

इस गणपति बीज में- ग=गणेश एवं बिन्दु=दुःखहरण।

इस प्रकार इस बीज का अर्थ है- भगवान् श्रीगणेश मेरे दुःख दूर करें।

11

ग्लौं (गणेश बीज)

इस गणेश बीज में- ग=गणेश, ल=दिव्य, औ=तेज एवं बिन्दु=दुःखहरण।

इस प्रकार इस बीज का अर्थ है- अलौकिक ज्योतिर्मय भगवान् गणेश मेरे दुःख दूर करें।

12

क्ष्रौं (नृसिंह बीज)

इस नृसिंह बीज में- क्ष=नृसिंह, र=ब्रह्म, औ दिव्य एवं बिन्दु=दुःखहरण।

इस प्रकार इस बीज का अर्थ है- ब्रह्मस्वरूप एवं दिव्य तेजस्वी भगवान् नृसिंह मेरा कल्याण करें।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मन्त्र का यह वाच्यार्थ साधक के लिए एक संकेत मात्र है जो साधना की प्रारम्भिक अवस्था में साधक को दिशानिर्देशकर उसकी पूरी-पूरी सहायता करता है। किन्तु वाच्यार्थ मन्त्र का परम अर्थ या यथार्थ नहीं होता। वह तो यथार्थ की ओर संकेत करता है। मन्त्र का यथार्थ मन्त्र- साधना द्वारा देवता का साक्षात्कार होने पर ही मालूम होता है। कुलार्णव तन्त्र में कहा गया है–

"मन्त्राणां चिन्तनाद्ध्र देवि समनुर्देवता स्वयम्।
ध्याने दर्शनं दत्त्वा पुनर्मन्त्रेषु लीयते।।"

मन्त्र-चैतन्य

मन्त्र के अर्थ एवं चैतन्य की विधि को जाने बिना जो साधक लाखों बार जप करता है– उसका वह मन्त्र सिद्ध नहीं होता, जैसा कि तन्त्रसार में कहा गया है–

"मन्त्रार्थं मन्त्रचैतन्यं यो न जानाति साधकः।
शतलक्षञ्च जप्तोऽपि लक्ष्यमन्त्रो न सिद्धयति।।"

पतञ्जलि ने मन्त्र चैतन्य के प्रसंग में मन्त्र को 'प्रत्येक चेतनाधिगम' कहा है– जिसके अनुसार मन्त्र के अर्थ, उसके देवता और उसकी शक्ति के साथ साधक का एकीकरण होना ही मन्त्र चैतन्य है और उसके बिना मन्त्र सिद्ध नहीं होता।

मन्त्र योग संहिता के अनुसार साधक को यह ध्यान करना चाहिए कि मन्त्र के सब वर्ण उसके हृदय में अनाहत-चक्र पर विद्यमान हैं और फिर मूलाधार में कुण्डलिनी को जगाकर सुषुम्णा-मार्ग से अनाहतचक्र में लाकर उसके मुख में संग्रहीत मन्त्राक्षरों को कुण्डलिनी के साथ विशुद्धचक्र का भेदन करते हुए सहस्रार में ले जाना चाहिए। वहाँ सहस्रदल कमल की कर्णिका में मन्त्र के वर्णों को चैतन्य स्वरूप मन्त्र शक्ति के साथ न्यस्त कर ध्यान करना चाहिए। इसके बाद मन्त्र का प्रत्येक वर्ण चैतन्य शक्ति से निर्मित होने के कारण चेतनामय है– इस भावना के साथ मन्त्र वर्णों को नाभिस्थित मणिपूरक में ले आना चाहिए। और फिर वहाँ वाणी में आते हुए मन्त्र का जप करना चाहिए-ऐसा करने से मन्त्र चैतन्य हो जाता है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

किन्तु मन्त्रचैतन्य की यह क्रिया अच्छे योगाभ्यास के बिना सम्भव नहीं है। अतः साधकों के लिए सरलता से मन्त्रचैतन्य करने की एक रीति सिद्धसारस्वत तन्त्र में बतायी गयी है, यथा – मन्त्र के पहले कामबीज (क्लीं), श्रीबीज (श्रीं) एवं मायाबीज (ह्रीं) और फिर अकार से क्षकार तक समस्त स्वरवर्णों (अं आं इं ई..............शं षं सं हं क्षं) फिर मन्त्र और इसके बाद उन्हीं बीजों एवं स्वरवर्णों को लगाकर जप करना चाहिए। इस प्रकार मूलमन्त्र का 108 बार जप करने से मन्त्र चैतन्य हो जाता है।

शातातपीय तन्त्र में मन्त्रचैतन्य की एक सरलतम रीति बतलायी गयी है – इसके अनुसार मूलमन्त्र को "ईं" से सम्पुटित कर प्रातः एवं सायं अर्धप्रहार तक सप्ताह भर जप करने से मन्त्र स्वयं चैतन्य हो जाता है।

मन्त्रों की कुल्लुका

सांसारिक कामना होने पर भी जो मन्त्र साधक को भव-बन्धन से बचाता है – वह कुल्लुका कहलाता है।[16] रूद्रयामल के अनुसार जो व्यक्ति कुल्लुका को जाने बिना मन्त्र-साधना करता है, उसकी आयु, विद्या, कीर्ति, धर्म एवं बल नष्ट हो जाता है। अतः मन्त्र साधना से पूर्व कुल्लुका का ज्ञान कर लेना चाहिए। सरस्वतीतन्त्र एवं वाराहीतन्त्र में बताया गया है, कि जप करने से पूर्व साधक को जिस देव के मन्त्र का जप करना हो, उसकी कुल्लुका का सिर पर न्यास कर लेना चाहिए। ऐसा करने से जप निर्विघ्न पूरा होता है, साधक का अभीष्ट सिद्ध होता है और वह भवबन्धन में नहीं फँसता।

विभिन्न देवता के कुल्लुका मन्त्र इस प्रकार हैं –

देवता		कुल्लुका मन्त्र
शिव	⇨	ॐ हौं
विष्णु	⇨	ॐ नमो नारायणाय
लक्ष्मी	⇨	ॐ श्रीं

16. "कुल्लुका बन्धनाद्रक्षेत्" –कुलार्णव।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सरस्वती	ॐ ऐं
अन्नपूर्णा	ॐ क्लीं
षोडशी	ॐ स्त्रीं
भुवनेश्वरी	ॐ ह्रीं
त्रिपुरसुन्दरी	ॐ क्लीं ह्रीं त्रिपुर भगवति स्वाहा अथवा क्लीं
मंजुघोषा	अरवचल धीं
धूमावती	ॐ ह्रीं
मातङ्गी	ॐ ॐ
भैरवी	ॐ हसरैं
काली	ॐ क्रीं हूं स्त्रीं ह्रीं फट्
तारा	ॐ ह्रीं स्त्रीं हूं
छिन्नमस्ता	ॐ ह्रीं ह्रीं ऐं ह्रीं ह्रीं स्वाहा
वज्रवैरोचिनी	ॐ श्रीं ह्रीं ह्रीं ऐं ह्रीं ह्रीं स्वाहा हूं

शेष अन्य सभी देवताओं के अपने-अपने मन्त्र ही उनकी कुल्लुका कहलाते हैं।

मन्त्र सेतु

साधक का मन्त्र के साथ सम्बन्ध जोड़ने वाला बीज सेतु कहलाता है।[17] मन्त्र का जप करने से पहले सेतुमन्त्र का हृदय में जप कर लेना चाहिए। प्रधानतया मन्त्रों का सेतु प्रणव है। अधिकांश तन्त्रग्रन्थों में ब्राह्मण और क्षत्रिय साधकों के लिए प्रणव, वैश्यों के लिए 'फट्' और शूद्रों के लिए 'ह्रीं' सेतु बताया गया है। सेतुमन्त्र का जप करने से साधक तान्त्रिकमन्त्र के जप का अधिकारी हो जाता है।

17."मन्त्री मन्त्रयोर्देवि सम्बन्धः सेतुरूच्यते"–योगिनी हृदय।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

महासेतु

साधक एवं मन्त्र के नित्य सम्बन्ध का उद्भावक बीज महासेतु कहलाता है।[18] जप करने से पहले महासेतु मन्त्र का जप किया जाता है। इसके प्रभाव से साधक को सभी अवस्थाओं में जप करने का अधिकार मिल जाता है।

काली का महासेतु 'क्रीं' तारा का 'हूं' तथा अन्य सभी देवताओं का महासेतु 'स्त्रीं' है। इसका जप कण्ठस्थित विशुद्धचक्र में किया जाता है।

निर्वाण

मन्त्र के स्वर वर्णों में स्वरवर्णों के स्थान पर शब्दब्रह्म की भावना का विकास निर्वाण कहलाता है। इससे मन्त्र में दिव्यता आती है।[19] उससे मन्त्र के आत्मस्वरूप का बोध होता है और मन्त्र जाग्रत हो जाता है। इसके लिए सर्वप्रथम प्रणव फिर अकार से क्षकार तक समस्त स्वरवर्ण फिर मूलमन्त्र के बाद समस्त स्वरवर्ण और अन्त में प्रणव लगाकर–अर्थात् प्रणव एवं मातृका से सम्पुटित मूल मंत्र का जप करना निर्वाण कहलाता है, यथा–ऊँ अं आं इं ईं........मूलमन्त्र अं आं इ ईं.....ऊँ।

मुख शोधन

मन्त्र का जप/अनुष्ठान करने से पहले मुखशोधन करना आवश्यक होता है। क्योंकि जिह्वा पर अनेक प्रकार के मल रहते हैं।[20] जेसे भोजन का मल, असत्य बोलने का मल, कलह एवं क्रूर वचनों का मल आदि। अशुद्ध जिह्वा से मन्त्रोच्चारण करने से मन्त्र सिद्ध नहीं होता। इसलिए मन्त्र शास्त्र में मुखशोधन की विधि बतलायी गयी है।

शातातपीय के अनुसार मुखशोधन की विधि यह है, कि जिस देवता के मन्त्र का जप करना हो, उसके अनुसार मुखशोधन का मन्त्र अपने मन्त्र के जप से पहले 10 बार जप लेना चाहिए। ऐसा करने से जिह्वा एवं मुख के मलों की शुद्धि हो जाती है और मन्त्र का जप करने के योग्य हो जाते हैं।

18."तयोश्च नित्यसम्बन्धः महासेतु भवेत्किल।"–तत्रैव
19."निर्वाणकर्म तद्देवि दिव्यता येन जायते।"–तत्रैव
20."जिह्वायाः मलशुद्धयर्थ मुखशुद्धिर्विधीयते।–शातातपीय"

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

देवताओं के अनुसार उनके मुखशोधन मन्त्र इस प्रकार हैं–

देवता		मुख शोधन मन्त्र
विष्णु	⇨	ॐ हं
लक्ष्मी	⇨	ॐ श्रीं
त्रिपुरसुन्दरी	⇨	श्रीं ॐ श्रीं ॐ श्रीं ॐ
तारा	⇨	हीं हूं हीं
मातङ्गी	⇨	ॐ ऐं ॐ
गणेश	⇨	ॐ गं
दुर्गा	⇨	ऐं ऐं ऐं
श्यामा	⇨	क्रीं क्रीं क्रीं ॐ ॐ ॐ क्रीं क्रीं क्रीं
बगलामुखी	⇨	ऐं हीं ऐं
धूमावती	⇨	ॐ धूं ॐ

अन्य सभी देवताओं के मुखशोधन का मन्त्र प्रणव होता है। मन्त्र जप करने से पहले मुखशोधन मन्त्र का 10 बार जप करना आवश्यक है।

प्राणयोग

जिस प्रकार प्राणयुक्त जीव ही कुछ कर सकता है उसी प्रकार प्राणयुक्त मन्त्र ही अभीष्ट फल दे सकता है। अन्यथा मन्त्र अक्षर समाम्नाय है। इसलिए अभीष्टफल की प्राप्ति के लिए मन्त्र का जप/अनुष्ठान करने से पहले प्राणयोग करना परमावश्यक है।

वाराहीतन्त्र एवं योगिनी हृदय तन्त्र में प्राणयोग की विधि इस प्रकार बतायी गयी है–कि मन्त्र का जप करने से पूर्व मायाबीज (हीं) से सम्पुटित मूल मन्त्र का सात बार जप करना प्राणयोग कहलाता है।[21]

21. "मायाबीजेन पुटितं मूलमन्त्रं जेपत्सुधी।
सप्तवारं जपात्पूर्वं प्राण योगरुदीरितः।।"

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

दीपिनी

जिस प्रकार दीपक के प्रदीप्त होने से अन्धकार दूर हो जाता है–उसी प्रकार दीपिनी क्रिया से मन्त्र का आवरण हट जाता है और साधक को अपनी एवं मन्त्र की समस्त शक्तियाँ प्रतीत होने लगती हैं। इसलिए मन्त्र का जप करने से पहले दीपिनी क्रिया करनी चाहिए। यह क्रिया केवल इतनी है, कि जप करने से पहले मन्त्र को प्रणव से सम्पुटित कर सात बार जप लेना चाहिए। [22]

मन्त्र के सूतक

मन्त्र के दो प्रकार के सूतक होते हैं-

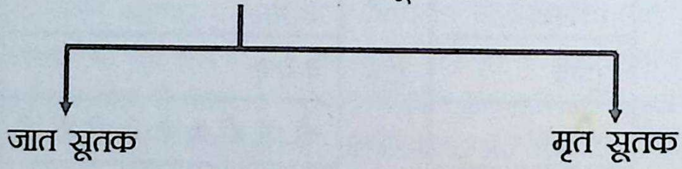

इन दोनों आशौचों को निवृत्त किए बिना मन्त्र सिद्ध नहीं होता। अतः इन दोनों सूतकों की निवृत्ति के लिए प्रणव से सम्पुटित मूल मन्त्र का जप प्रारम्भ में और समाप्ति पर 108 बार या 7 बार करना चाहिए। [23]

मन्त्र के दोष

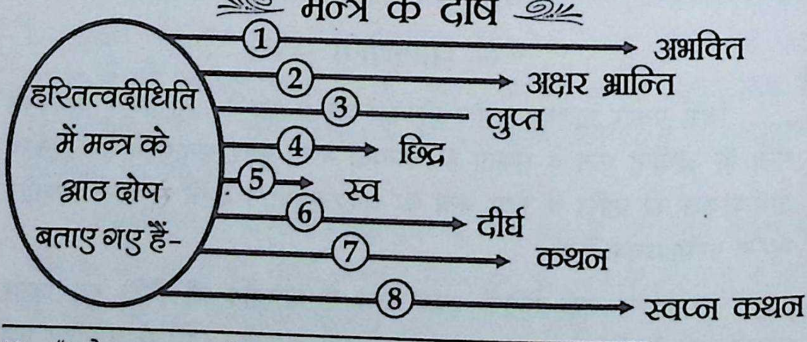

22. "प्रणवेन मूलमन्त्रस्य पुटितस्य परमेश्वरि
सप्तवारं जपं सन्दीपिनी विद्याखिलार्थदा।।"

23. "जातसूतकमादौ स्यादन्ते च सूतसूतकः। सूतकद्वयसंयुक्तो यो मन्त्रः स नसिद्ध्यति।।
सूतकद्वयनिर्मुक्तः स मन्त्रः सर्वसद्धिदः। तस्माद्देवि प्रयत्नेन ध्रुवेण पुटितं मनुम्।
अष्टोत्तर शतं वाऽपि सप्तवारं जपादितः। जपान्ते च ततो जाप्यच्चतुर्वर्गफलाप्तये।।"

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मन्त्र को अक्षर/वर्णों की समष्टि समझना या दूसरे मन्त्र को अपने मन्त्र से श्रेष्ठ समझना अभक्ति नामक दोष कहलाता है। साधक की मन्त्र में भक्ति न होने पर उसको सिद्धि नहीं मिलती।

गुरू या शिष्य के प्रमाद्वश मन्त्र के अक्षरों में उलट-फेर हो जाना अक्षर भ्रान्तिदोष कहलाता है। मन्त्र में किसी वर्ण की न्यूनता को लुप्त दोष कहते हैं। मन्त्र में संयुक्त वर्णों में से किसी अंश का छूट जाना छिद्र दोष कहलाता है। दीर्घवर्ण के स्थान पर ह्रस्व का उच्चारण 'ह्रस्व-दोष' और ह्रस्ववर्ण के स्थान पर दीर्घवर्ण का उच्चारण 'दीर्घ-दोष' कहलाता है। जाग्रत अवस्था में अपना मन्त्र किसी को बता देना 'कथन दोष' और स्वप्न में अपना मन्त्र किसी को बता देना 'स्वप्नकथन' नामक दोष होता है।

शारदा पटल में इन दोषों के अलावा रूद्ध, शक्तिहीन एवं पराङ्मुख आदि अन्य पचास दोष बताए गए हैं। सात करोड़ मन्त्रों में से सभी मन्त्र किसी न किसी दोष से युक्त, होते हैं। इन दोषों को न जानते हुए या दोषों को जानकर उनकी निवृत्ति न करते हुए, जो व्यक्ति मन्त्र- साधना करता है, उसे कभी भी सिद्धि नहीं मिलती।[24]

दोषनिवृत्ति के उपाय

मन्त्र सर्वशक्तिमान् देवता का स्वरूप है – ऐसा अनुभव कर एक-एक मन्त्र के उच्चारण में परमानन्द का अनुभव करते हुए मन्त्र का जप करने से मन्त्राधिष्ठातृ देवता प्रसन्न हो जाता है और तब उसकी कृपा से भक्ति का उदय होता है। भक्ति उदित होने से विश्वास और उससे सिद्धि मिल जाती है। अभक्ति दोष को दूर करने का यह उत्तम उपाय है।

अक्षर भ्रान्ति, लुप्त, छिन्न, ह्रस्व एवं दीर्घदोष की निवृत्ति के लिए पुनः दीक्षा लेनी चाहिए और शेष दोषों की निवृत्ति के लिए मन्त्र के दश संस्कार करने चाहिए।

---

24. "दोषानिमानविज्ञाय यः मन्त्रान् भजते नरः।
सिद्धिर्न जायते तस्य कल्पकोटि शतैरवि।।"

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इन संस्कारों के नाम हैं-

1	जनन	2	दीपन	
3	बोधन	4	ताडन	
5	अभिषेक	6	विमलीकरण	
7	जीवन	8	तर्पण	
9	गोपन	10	आप्यायन	

जनन

भोजपत्र पर लालचन्दन और गोरोचन से जनन यन्त्र लिखकर उस पर विधिवत मातृकादेवी का आवाहन एवं पूजन कर एक अन्य भोजपत्र पर अपने मन्त्र के एक-एक वर्ण का उद्धार करना चाहिए। तत्पश्चात् इन वर्णों का मार्जनकर पूरा मन्त्र लिखना चाहिए। इस क्रिया को जनन संस्कार कहते हैं।

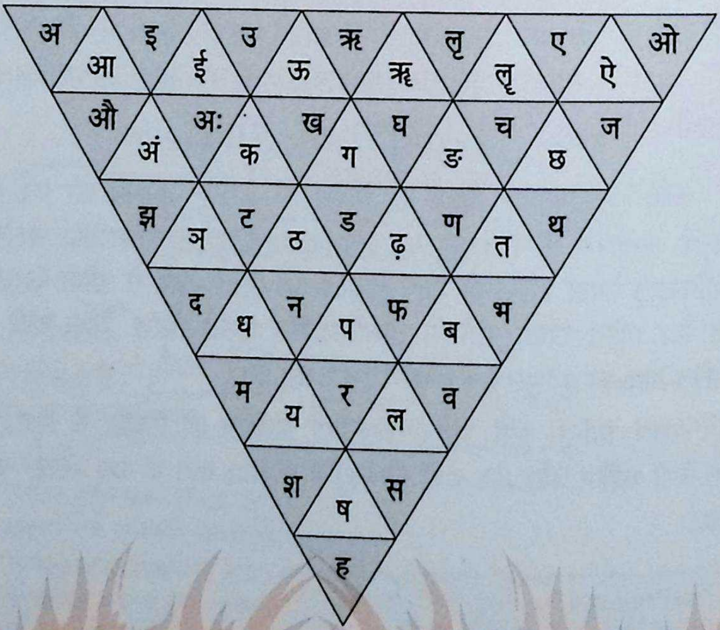

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

दीपन

हंस मन्त्र से सम्पुटित अपने मूल मन्त्र का एक हजार जप करना दीपन संस्कार कहलाता है। उदाहरणार्थ गणपति मन्त्र (गं गणपतये नमः) का दीपन संस्कार करने के लिए–

"हंसः गं गणपतये नमः सोऽहम्" का एक हजार जप करना चाहिए।

बोधन

'हूं' बीज से सम्पुटित मूल मन्त्र का पाँच हजार जप करना बोधन कहलाता है, यथा–

हूं गं गणपतये नमः हूं।

ताडन

'फट्' से सम्पुटित मूल तन्त्र का एक हजार जप करना ताडन कहलाता है, यथा–

फट् गं गणपतये नमः फट्।

अभिषेक

भोजपत्र पर मूलमन्त्र लिखकर 'ऐ हंसः ओं' मन्त्र से एक हजार बार अभिमन्त्रित जल से इसी मन्त्र द्वारा अपने मन्त्र का अभिषेक करना अभिषेक संस्कार कहलाता है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विमलीकरण

'ओं त्रों वषट्' मन्त्र से सम्पुटित मूलमन्त्र का एक हजार जप करना विमलीकरण कहलाता है, यथा– **'ओं त्रों वषट् गं गणतपये नमः ओं त्रों वषट्।**

जीवन

"स्वधा वषट्" से सम्पुटित मूलमन्त्र का एक हजार जप करना जीवन कहलाता है, यथा–

स्वधा वषट् गं गणपतये नमः स्वधा वषट्।

तर्पण

दूध, दही, मधु या जल से मूलमन्त्र से एक हजार बार तर्पण करना तर्पण संस्कार कहलाता है।

गोपन

मायाबीज (ह्रीं) से सम्पुटित मूल मन्त्र का एक हजार जप करना गोपन कहलाता है, यथा–

ह्रीं गं गणपतये नमः ह्रीं।

आप्यापन

'ह्सौः' बीज से सम्पुटित मूलमन्त्र का एक हजार जप करना आप्यापन कहलाता है, यथा–

हसौः गं गणपतये नमः हसौः।

इन संस्कारों से संपृक्त मन्त्र साधन बनकर साधना के माध्यम से सिद्धि देता है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

9

परम्परागत शिक्षा-पद्धति एवं उसका रहस्य

ज्ञान-प्राप्ति की प्रविधि का नाम है शिक्षा। किन्तु परम्परागत शिक्षा पद्धति एवं वर्तमान शिक्षा-पद्धति में जमीन-आसमान का अन्तर है। परम्परागत शिक्षा पद्धति का उद्देश्य व्यक्ति के व्यक्तित्व समग्र विकास कर उसका सर्वाङ्गीण कल्याण करना है, जबकि वर्तमान शिक्षा पद्धति का उद्देश्य रोजगार करने के लायक बनाना है। इसलिए इन दोनों शिक्षा-पद्धतियों की शिक्षा-दीक्षा की प्रविधियों में आधारभूत अन्तर होना स्वाभाविक है।

परम्परागत शिक्षा-पद्धति ने रोजगार को नकारा नहीं है, किन्तु उसने स्वयं को रोजगार तक सीमित नहीं रखा है। वस्तुतः यह मनुष्य के जीवन की समस्या एवं संकटों का समाधान करते हुए मानवमात्र को अधिकतम सुविधा और सुरक्षा देकर लोक एवं परलोक दोनों के लिए कल्याणकारी मार्ग बताती है। उसका लक्ष्य भुक्ति एवं मुक्ति दोनों है। इसलिए वह धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष – इन चारों पुरुषार्थों की सिद्धि का दिशा-निर्देश करती है। ऐसा महनीय एवं कमनीय उद्देश्य है–परम्परागत शिक्षा पद्धति का।

अपने इस असाधारण उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए इस शिक्षा प्रणाली ने मानवीय चेतना के समस्त स्तरों का विकास करने पर ध्यान दिया है। कारण यह है कि जैसे गँदले, चंचल और अन्धेरे पानी के हौज या गड्ढ़े में पड़ी हुई किसी चीज को या अपनी परछाईं को देखकर ठीक-ठीक तरह से नहीं पहचाना जा सकता–उसी प्रकार मल, विक्षेप एवं आवरण से युक्त बुद्धि यथार्थानुभव नहीं

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कर पाती। यथार्थानुभव के लिए चित्त की शुद्धि, मन की स्थिरता और बुद्धि की सूक्ष्म प्रतिभा होनी चाहिए क्योंकि चित्त की शुद्धि मल का प्रक्षालन करती है। मन की स्थिरता विक्षेप को रोकती है और बुद्धि की सूक्ष्म प्रतिभा आवरण को हटाती है। अतः ऋषिकुल एवं गुरूकुल की परम्परागत शिक्षा में मन्त्र, तन्त्र एवं यन्त्र जैसी गूढ़ विद्याओं की शिक्षा-दीक्षा से पूर्व – मल, विक्षेप एवं आवरण को दूर कर चेतना के विकास पर पूरा-पूरा जोर दिया गया है।

इस शिक्षा पद्धति में बाह्य एवं अन्तःस्थ शास्त्र द्वारा चित्त की शुद्धि, आत्मविश्वास एवं निष्ठा द्वारा मन की स्थिरता और सतत अभ्यास द्वारा बुद्धि की सूक्ष्मता के लिए सहज विधि का अवलम्बन किया जाता है। यह एक ऐसी सशक्त, सक्षम एवं परिपूर्ण प्रविधि है, जो मल, विक्षेप और आवरण से बुद्धि को मुक्त कर उसको मेधा, प्रज्ञा, प्रतिभा और अन्ततोगत्वा अन्तश्चेतना के स्तर पर विकसित कर देती है।

इस शिक्षा पद्धति के रहस्य को आत्मसात् करने के लिए निम्नलिखित तीन तत्वों को जानना और पहिचानना आवश्यक है। ये तत्व हैं–

1. शास्त्र
2. विश्वास एवं निष्ठा
3. सतत अभ्यास

शास्त्र/मन्त्रशास्त्र

चित्त के ऊपर जमी विकारों[25] की मैली परत को धोने के लिए शास्त्र का जल सशक्त उपाय है। जैसे शरीर के मल का प्रक्षालन करने के लिए प्रतिदिन स्नान किया जाता है, उसी प्रकार चित्त की शुद्धि के लिए ज्ञान की गंगा में अवगाहन किया जाता है।[26]

---

25. काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर, ईर्षा, द्वेष, स्वार्थ एवं हठ–ये 10 विकार होते हैं।
26. "सकृद्गीताम्भस स्नानं संसारमलनाशनम्।"–गीता माहात्म्य।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

साधना की समग्र जानकारी देने वाले ज्ञान को शास्त्र कहते है। इस ज्ञान की दो विशेषताएं हैं– पहली यह कि विधि-निषेधों के माध्यम से स्पष्ट निर्देश देते हुए यह अपने अनुशासन से साधक को मार्गच्युत होने नहीं देता और दूसरी यह कि–यह साधक के अन्तःकरण में गुह्यरूप से विद्यमान रहता है। क्योंकि ऐसा कोई ज्ञान किसी भी व्यक्ति को मात्र बुद्धि से नहीं सिखाया जा सकता, जो उसके अन्तःकरण में पहले से बीज रूप में विद्यमान न हो। व्यक्ति की विविध शास्त्रों के प्रति अभिरुचि, उत्कण्ठा, सक्रियता एवं क्षमता का तारतम्य इस बात का साक्ष्य है कि विविध ज्ञान या शास्त्र उसके अन्तःकरण में नैसर्गिक रूप से गुह्य या बीज रूप में विद्यमान रहते हैं। इसलिए जो व्यक्ति जिस शास्त्र या ज्ञान का विद्वान् या विशेषज्ञ होता है, उसमें वह शास्त्र या ज्ञान बीज रूप में पहले से ही विद्यमान रहता है और समय के साथ मनोयोगपूर्वक प्रयत्न करने से वह अंकुरित, विकसित एवं फलित हो जाता है। यदि ऐसा न होता तो प्रत्येक व्यक्ति प्रत्येक शास्त्र का विद्वान् या विशेषज्ञ हो जाता। लाख प्रयत्न करने पर भी सब लोग सब शास्त्रों के अधिकारी विद्वान् नहीं बन पाते। कारण स्पष्ट है उनमें वह शास्त्र पहले से बीज रूप में विद्यमान नहीं है। पाराशर, जैमिनी, गर्ग, कपिल, कणाद एवं पतञ्जलि जैसे ऋषियों ने और जेम्सवाट, आइजक न्यूटन एवं थामस एडिसन जैसे वैज्ञानिकों ने जिन नये सिद्धांतों का आविष्कार एवं विकास किया है, वे उनके अन्तःकरण में पहले से बीज रूप में विद्यमान थे, अस्तु।

इस विषय में एक और बात ध्यान में रखनी चाहिए कि अन्तःकरण में पहले से विद्यमान ज्ञान मनोयोगपूर्वक प्रयत्न की सापेक्षता अवश्य रखता है, किन्तु वह किसी औपचारिक शिक्षा का मोहताज नहीं होता। यदि वह किसी औपचारिक शिक्षा पद्धति पर आधारित होता तो एकलव्य, कालिदास, कबीरदास, जेम्सवाट एवं बिलगेट्स जैसे लोग, जिन्होंने किसी गुरूकुल या विद्यालय में औपचारिक शिक्षा नहीं पायी थी, अपने-अपने क्षेत्र में सिद्ध हस्त नहीं बन पाते।

वस्तुतः हमारा श्रेष्ठतम ज्ञान मनुष्य के हृदय में गुप्तरूप से या प्रसुप्त रूप से विद्यमान रहता है। उस सनातन ज्ञान का कमल हमारे अन्दर बन्द या संकुचित कमल-कली के रूप में विद्यमान है। जब एक बार मनुष्य मनोयोगपूर्वक उसके साथ तालमेल मिलाकर उसको देखना प्रारम्भ करता है, तब क्रमिक एवं

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

निरन्तर होने वाली अनुभूतियों द्वारा ज्ञान-कमल कभी एक-एक दल करके और कभी-कभी पूरा का पूरा विकसित हो जाता है। इसके बाद सारा जीवन, सारे विचार, समस्त निर्णय, सम्पूर्ण आचार एवं सारे अनुभव-चाहे वे निष्क्रिय हों या सक्रिय, लौकिक हों या पारलौकिक एवं वैयक्तिक हों या सर्वजनीन-ऐसे सशक्त साधन बन जाते हैं, जिनके द्वारा चित्तवृत्तियों का अज्ञान रूपी मल धुल जाता है।

साधारणतया इस आत्मप्रकाश या आत्मज्ञान का साधन श्रुत शब्द है, जिसे शब्दब्रह्म कहते हैं। यह शब्द अन्दर से भी आ सकता है और बाहर से भी। परन्तु दोनों अवस्थाओं में यह हमारे अन्तःस्थित गुप्तज्ञान को जगाने और क्रियाशील बनाने का कारणमात्र होता है। अन्दर से आने वाला शब्द अन्तरात्मा का संकेत है। यह भक्तों की भाषा में सबके हृदय में वास करने वाले ईश्वर की प्रेरणा है। केवल इस संकेत को जानने, पहिचानने और उसका उपयोग करने की आवश्यकता है। साधक अपने मनोयोगपूर्वक अभ्यास द्वारा इसको जान और पहिचान सकता है तथा गुरू के निर्देशानुसार इसका उपयोग कर सकता है।

तात्पर्य यह है कि अन्तः से आने वाले ज्ञान का विकास एवं परिष्कार करने के लिए बाहर के शास्त्रीय या अनुभवजन्य शब्द की सहायता ली जाती है। यह शब्द या तो पुराकालीन ऋषि या आचार्य का होता है अथवा वर्तमानकाल के किसी महान् गुरू का। यही शब्द साधकों के अन्तःकरण की ज्ञानशक्ति को जगाने और उसको अभिव्यक्ति देने का निमित्त होता है। इस प्रकार बाह्य शब्द - जो शास्त्र या गुरू की वाणी है, अन्तःकरण में सुप्त ज्ञान को जाग्रत एवं क्रियाशील करने का अवलम्बन मात्र है। वस्तुतः शब्द चाहे अन्तःकरण से या बाहर से सम्बद्ध हो – ये दोनों एक दूसरे के पूरक या अन्योन्याश्रित होते हैं और दोनों मिलकर व्यक्ति के मानस पर जमी हुई मैल की परतों– दरपरतों को उतारते हैं।

इस प्रसंग में एक बात ध्यान में रखनी चाहिए कि साधना के क्षेत्र में प्रारम्भ से ही अन्तःशब्द से प्रेरणा लेकर सिद्धि प्राप्त करने वाले साधक गिने-चुने ही होते हैं। ज्यादातर साधक- शास्त्र, ऋषि या गुरू के वाणीरूपी बहिःशब्द के माध्यम से अन्तःज्ञान को जाग्रत एवं क्रियाशील कर साधना करते हैं इस प्रक्रिया में शास्त्र उनका तत्व/ज्ञान से परिचय कराता है और गुरू के मार्ग

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

निर्देशन में मनोयोगपूर्वक अभ्यास करने से अन्तःकरण में स्थित ज्ञान से उसका सामञ्जस्य हो जाता है और इसके बाद साधना के माध्यम से साधक एक के बाद एक के क्रम से सिद्धियों के सोपान पर चढ़ता हुआ उच्चतम शिखर पर चढ़ जाता है।

साधना की यह पद्धति प्रारम्भ में कुछ तंग या संकरी अवश्य है, परन्तु अपने नियम एवं मर्यादा के कारण बहुत ही निरापद एवं फलप्रद है। क्योंकि नियम एवं मर्यादा के तंग द्वार से प्रविष्ट होने के बाद मनोयोग एवं अभ्यास साधक को पूर्वनिर्मित राजमार्ग पर ले आते हैं। जिस पर विश्वासपूर्वक चलकर साधक अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है।

साधना के क्षेत्र में यह स्मरण रखना चाहिए कि कोई भी लिखित शास्त्र, चाहे उसकी प्रामाणिकता कितनी ही सुदृढ़ हो और उसके नियम/अनुशासन कितने ही प्रासंगिक क्यों न हों, वह सनातन अन्तः ज्ञान का एक अंश मात्र है। जो शास्त्र/ग्रन्थ जितना गम्भीर, विशाल, सन्तुलित एवं उदार होगा–उसका उतना ही गहरा, व्यापक, दीर्घकालीन एवं कल्याणकारी प्रभाव साधक पर पड़ेगा। सत्य के ऊँचे से ऊँचे विविध स्वरूपों और परम-अनुभूतियों की ओर सशक्त संकेत देकर शास्त्र साधना के गूढ़ एवं तंग द्वार को खोलता है और फिर विधि-निषेधों एवं नियमों की मर्यादाओं के माध्यम से यह साधना की समस्त गतिविधियों से परिचय कराता है। इसलिए साधक के लिए शास्त्र और शास्त्रीयज्ञान आवश्यक है।

हमारी परम्परा में शास्त्र दो रूपों में मिलता है-

1. लिखितरूप में और 2. गुरू परम्परा के उपदेश रूप में

शास्त्र चाहे लिखित हो या गुरू परम्परा अथवा गुरूमुख से प्राप्त हो, यह साधक, साधन, साधना, एवं साध्य के बारे में समग्र जानकारी देता है। साधक का अधिकार, साधन, मार्ग, साधना का क्रियात्मक ज्ञान और उसका परिणाम–इन सब का प्रतिपादन शास्त्रों में होता है। हमारे देश में ऐसे लिखित शास्त्रों एवं परम्परागत ज्ञान की बड़ी मान्यता है। भारतीय जनता की इन पर बड़ी श्रद्धा एवं आस्था है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

साधना का प्रत्येक मार्ग यहाँ सुनिश्चित माना जाता है। जिस गुरू ने जिस परम्परा से यह शास्त्र या ज्ञान प्राप्त किया है, उसी परम्परा के निर्धारित मार्ग और उसी क्रम से साधना की जाती है। बहुधा गुरू अपने शिष्यों को अपने परम्परागत मार्ग पर चलाने का निर्देश देते हैं और साधक शिष्य भी उसी परम्परागत मार्ग का अनुसरण करते हैं। प्रायः यह देखने में आता है, कि यदि नई साधना विधि, नया मार्ग या नई बात सामने आ जाए, तो उसको अशास्त्रीय या परम्परा के विरुद्ध घोषित कर दिया जाता है। वस्तुतः साधना के प्रारम्भिक दिनों में शास्त्र की मर्यादा एवं अनुशासन का पालन करना आवश्यक है। किन्तु परिपक्व साधक या गुरू के लिए यह आवश्यक नहीं है।

सारांश में यह कहा जा सकता है कि लिखित, परम्परागत या गुरूमुख से प्राप्त शास्त्र अनेक सदियों, सहस्राब्दियों का अनुभव है, जिसे ज्ञानी साधकों एवं गुरूओं ने क्रमबद्ध एवं सुव्यवस्थित कर आज की पीढ़ी के नये साधक को उपलब्ध कराया है। अतः इसका महत्व एवं उपयोगिता अंसदिग्ध है। किन्तु साधना के क्षेत्र में नया मार्ग और नये परिवर्तन की स्वतन्त्रता सदा ही व्यावहारिक रही और मानी गयी है। यदि ऐसा न होता तो मन्त्र-तन्त्र के हजारों ग्रन्थों की रचना न होती साधना के अनेक सम्प्रदाय न होते, हर सम्प्रदाय में अनेक मार्ग न होते और एक ही देवता के अनेक मन्त्रों एवं स्तोत्रों को साधन न माना जाता।

साधना में ज्ञान को किसी लिखित या परम्परागत शास्त्र से हमेशा-हमेशा के लिए बांध देना इसलिए जरूरी नहीं है, क्योंकि यह एक ओर जहाँ पुराकालीन (भूतकालीन) अनुभवों को अपनाता है–वहाँ दूसरी ओर यह वर्तमान एवं भविष्य को तत्कालीन परिस्थिति के साथ सामञ्जस्य कर उसका उपयोग करने की यथेष्ट चेष्टा करता है। साधना के क्षेत्र में लगातार आगे बढ़ने के लिए पूर्व के उपयोग को छोड़ा नहीं जा सकता। परिणामतः इस क्षेत्र में लगातार आगे बढ़ने के लिए यह आवश्यक है कि प्राचीन अनुभूतियों और जानकारियों को नित नये-नये सन्दर्भों में देख-देखकर उनके निष्कर्षों को नये शब्दों और नये रूप में पुनः निरूपित करने की स्वतन्त्रता हो। क्योंकि यह शास्त्र जीवन एवं जगत् के समस्त पहलुओं को अपने अन्दर समाविष्ट करना चाहता है। अतः इसकी अवस्था उस

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यात्री की सी नहीं है, जो पूर्वनिर्मित राजमार्ग से सीधे अपने गन्तव्य स्थान को जाता है, बल्कि एक हद तक एक ऐसे मार्ग ढूँढ़ने वाले पथिक जैसी है, जो किसी निर्जन एवं गहन जंगल में अपना रास्ता निकालता और बनाता चल रहा हो। इसका कारण यह है कि समय के परिवर्तन के साथ केवल परिस्थितियों में ही नहीं, अपितु मानव की मनःस्थिति में भी परिवर्तन हो जाता है। इसीलिए हमारे पूर्वजों ने वैदिक मन्त्रों जैसे सशक्त मन्त्रों के रहते हुए भी परिस्थितियों के अनुसार तान्त्रिक मन्त्रों को और उनके रहते हुए भी नयी परिस्थितियों के अनुसार साबर मन्त्रों को अपनी साधना का आधार बनाया।

इस विषय में हमारा विचार यह है, कि हमारा शास्त्र ऐसा होना चाहिए–जिसमें साधक को देश, काल, परिस्थिति एवं मनःस्थिति के अनुरूप अपने साधन का चयन और अवलम्बन की अबाधित स्वतन्त्रता हो। तात्पर्य यह है कि मनुष्य वर्तमान सन्दर्भ में जिस रीति से, जिस साधना से और जिस रूप से लौकिक या पारलौकिक उद्देश्य के लिए साधना करना चाहे–उसको उस साधना में बाधा नहीं आनी चाहिए। ऐसी स्वतंत्रता का होना साधना एवं अध्यात्म में प्रगति के लिए अति आवश्यक है। यह स्वतन्त्रता साधक का अधिकार है और प्राचीन आचार्यों ने इसको सहजता से स्वीकार किया है। यदि ऐसा न होता, तो एक ही धर्मशास्त्र होता, साधना की एक ही विधि होती, एक ही देवता होता और उसकी साधना का एक ही मन्त्र और एक ही स्तोत्र होता। किन्तु वस्तुतः ऐसा नहीं है। अपितु मानव के लिए अनेक धर्म एवं धर्मशास्त्र, प्रत्येक धर्म में अनेक सम्प्रदाय, प्रत्येक सम्प्रदाय में अनेक साधन की विधियाँ, अनेक देवी-देवताओं के लिए ही नहीं एक देवता के लिए भी अनेक मन्त्रों का विनियोग और एक देवता की स्तुति के लिए अनेक स्तोत्रों का होना–इस बात का साक्ष्य है, कि साधना के लिए साधक को देश, काल एवं परिस्थिति आदि के अनुरूप अपने साधन का चयन करने की बिना बाधा के पूर्णरूपेण स्वतन्त्रता है।

साथ ही इस प्रसंग में यह भी नहीं भुलाना चाहिए कि जब तक साधक परिपक्व नहीं हो जाता, तब तक साधक को शास्त्र के नियम, मर्यादा, अनुशासन एवं प्राचीन अनुभवों का आश्रय लेना चाहिए। क्योंकि अपनी इस अवस्था में इनके बिना वह न तो अपना लक्ष्य ही निर्धारित कर सकता है और न ही अपना

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सही मार्ग पकड़ सकता है। साधना का क्षेत्र असीमित होने के कारण प्रारंभ में साधक को बड़ी कठिनाई और कभी-कभी किंकर्तव्यविमूढ़ता की स्थिति पैदा हो जाती है। इन सब से बचने के लिए साधक को मन्त्रशास्त्र का आश्रय लेना चाहिए। यह शास्त्र उन सत्यों, सिद्धांतों, प्रविधियों एवं नियमों का तर्कपूर्ण एवं सोदाहरण निरूपण है, जो साधक की चित्तवृत्ति को निर्मल बनाकर उसको साधना के माध्यम से लक्ष्य या सिद्धि तक पहुँचने में सर्वाधिक सहायता करता है।

विश्वास एवं निष्ठा

किसी प्रक्रिया में–चाहे वह ज्ञानार्जन की हो या लौकिक अथवा पारलौकिक सिद्धि की हो–उसमें विघ्न-बाधा, असुविधा एवं विलम्ब (देरी) का आना स्वाभाविक है। यदि कोई कार्य निर्धारित समयावधि में योजनानुसार कदाचित पूरा हो जाए तो यह एक अपवाद है। अन्यथा प्रत्येक कार्य की पूर्ति में विघ्न-बाधाएँ आती ही हैं। साधना के क्षेत्र में शास्त्र द्वारा निर्धारित मार्ग एवं प्रक्रिया में मनोयोगपूर्वक एवं निरन्तर लगे रहने की दृढ़ता के बिना लक्ष्य सिद्ध नहीं होता। मन्त्रवेत्ताओं के अनुसार साधना की प्रक्रिया में स्वाभाविक रूप से आने वाले विघ्न, बाधा आदि विक्षेप हैं जो मन को विचलित एवं असन्तुलित करते हुए मनोयोग को भंग करते है। जबकि मनोयोगपूर्वक एवं निरन्तर साधना में संलग्न रहने की दृढ़ता का नाम विश्वास है। यही दृढ़ भाव अर्थात् विश्वास साधना में सफलता की कुंजी है।[27]

यह विश्वास दो प्रकार का होता है-

1 आत्मविश्वास एवं 2 इष्टदेव में निष्ठा

आत्मविश्वास आत्मविश्वास एक सुदृढ़ भाव ही नहीं है, अपितु यह हमारी वैयक्तिक एवं सामूहिक शक्ति का मूल केन्द्र है। इसके बिना न तो लगातार प्रयत्न ही किया जा सकता है और न ही विषम और प्रतिकूल परिस्थिति का मुकाबला कर लक्ष्य की ओर बढ़ा जा सकता है। चाहे कोई व्यक्तिगत स्पर्धा हो या टीम का मैच–इसमें वही व्यक्ति या दल सफल होता है, जिसमें पूरा-पूरा आत्मविश्वास हो।

27. "विश्वासो फलदायकः।"

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

साधना की प्रारम्भिक अवस्था से लेकर सिद्धि तक की समस्त प्रक्रिया, उसकी निरन्तरता एवं परिणाम की अनुकूलता में जिस वैयक्तिक शक्ति की सबसे बड़ी भूमिका होती है–उसका नाम आत्मविश्वास है। जिस साधक में आत्मविश्वास जितना अधिक होता है, उसको सिद्धि मिलने की सम्भावना उतनी ही अधिक होती है और जिस साधक में इसके विपरीत जितना संशय अधिक होता है, उनको उतनी ही अधिक कठिनाइयाँ भुगतनी पड़ती हैं। अतः साधक का आत्मविश्वास उसकी सफलता का मूल कारण है।

मन्त्र साधना की सार्थकता इसी में है, कि यह साधक की अहंभावापन्न चेतना-जो विषयों और व्यामोहों में डूबी रहती है, से अपना मुँह फेर ले और चैतन्य की उस उच्च्व स्थिति की ओर अभिमुख हो जाए जिसमें विश्वचैतन्य या विश्वातीत चैतन्य साधक की अनुभूति का विषय बन जाय। इस स्थिति में साधक का मन सांसारिक विषयों एवं व्यामोहों से पीछे हट जाता है। फलतः साधक का आत्मविश्वास उसके मन को विक्षेप या चंचलता से मुक्त कर उसमें एकाग्रता और निरन्तरता को विकसित करता है। अतः आत्मविश्वास साधक का प्रमुख धर्म है।

साधक का आत्मविश्वास – उसकी संकल्प शक्ति अध्यवसाय, लक्ष्य के प्रति एकाग्रता और प्रतिकूल परिस्थितियों में अविचलित भाव के रूप में परिलक्षित होता है। साधक की यही संकल्प शक्ति एवं अध्यवसाय उसके विक्षेप या मानसिक विचलन को रोककर उसके अहंकार की मोमबत्ती के मोम को धीरे-धीरे और लगातार विगलित कर देते हैं। जबकि लक्ष्य के प्रति एकाग्रता और प्रक्रिया में निरन्तरता उसको लक्ष्य की ओर बढ़ाती है तथा प्रतिकूल परिस्थितियों में अविचलन साधना में आने वाले विघ्न–बाधाओं को नियन्त्रित करता है। इस प्रकार साधक का आत्मविश्वास उसकी ऊर्जा का मूलकेन्द्र है। इसके महत्व का अनुमान इस छोटे से उदाहरण से लगाया जा सकता है–जैसे बिजली के चले जाने पर सारे विद्युत उपकरण ठप्प हो जाते हैं–अपना-अपना काम बन्द कर देते हैं–ठीक उसी प्रकार आत्मविश्वास भंग हो जाने पर साधना की सभी गतिविधियाँ ठप्प हो जाती हैं।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इष्टदेव में निष्ठा आत्मविश्वास साधक की शक्ति का एक पहलू है, जो साधना में उसको एकाग्रता एवं निरन्तरता प्रदान करता है। जबकि शास्त्र, गुरू एवं प्रभु में उसकी निष्ठा उसकी शक्ति का वह दूसरा पहलू है, जो उसको पूर्णता प्रदान करता है।

मन्त्र साधना की दो अवस्थाएँ हैं, जो एक-दूसरे से सर्वथा भिन्न या पृथक नहीं–अपितु एक सीमा तक परस्पर सम्बद्ध हैं। इनमें से पहली अवस्था वह है, जिसमें साधक यथासम्भव अहंभाव से परे जाने और अपने प्रभु से सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयत्न करता है, जब कि दूसरी अवस्था वह है, जहाँ साधक प्रभु की इच्छानुसार संसार में रूपान्तरित प्रभु की सत्ता का उपयोग करता है।

वस्तुतः जब तक प्रभु के साथ साधक का सम्बन्ध पर्याप्त मात्रा में गहरा नहीं हो जाता या जब तक वह एक निश्चित सीमा तक अपने इष्टदेव की निकटता अथवा कृपा प्राप्त नहीं कर लेता–तब तक साधना में व्यक्तिगत प्रयत्नशीलता और उसके लिए आत्मविश्वास की आवश्यकता रहती है। किन्तु जब साधक का अपने प्रभु से सम्बन्ध स्थापित हो जाए या जब इष्ट देव की निकटता अथवा उनकी कृपा का अनुभव हो जाए, तब अहंकार के धीरे-धीरे और पूर्णरूपेण समाप्त होने पर साधक का आत्मविश्वास निष्ठा में परिवर्तित हो जाता है।

इस विषय में यह ध्यान रखना चाहिए कि आत्मविश्वास – विक्षेप या विचलन को पर्याप्त मात्रा में रोकता है किन्तु इसमें अहंकार विद्यमान रहता है। अतः अहंकार की सत्ता के कारण यह विक्षेप या विचलन को पूर्णरूपेण समाप्त नहीं कर पाता। आत्मविश्वास में आत्मपद अहंकार की न्यूनता का सूचक है। इस न्यूनतम मात्रा के सर्वथा नष्ट हो जाने पर साधक का निरहंकार विश्वास ही स्वयं निष्ठा में परिवर्तित हो जाता है। इस प्रकार आत्मविश्वास एवं निष्ठा एक-दूसरे से सर्वथा अभिन्न न होते हुए भी एक सीमा तक एक-दूसरे से सम्बद्ध हैं अथवा यह कह सकते हैं कि ये एक-दूसरे के पूरक हैं। इन दोनों में से आत्मविश्वास विक्षेप या विचलन को रोकता है, तो निष्ठा उनको नष्ट कर देती है। इसीलिए आत्मविश्वास एवं निष्ठा के बिना साधना में आगे नहीं बढ़ा जा सकता।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रभु के प्रति निष्ठा से साधक का उनके साथ स्थायी सम्बन्ध बन जाता है। जिससे साधक को यह ज्ञान होता है, कि उसकी अपनी शक्ति से भिन्न कोई शक्ति, उसके अपने अहंकार, प्रयत्न और योग्यता से परे की शक्ति–उसके अन्दर कार्य कर रही है। ऐसा अनुभव होने पर वह उस पराशक्ति के अधीन होना सीख लेता है और अपनी साधना का ही नहीं अपने समस्त क्रियाकलापों का भार एवं दायित्त्व उसको सौंप देता है। इस प्रकार प्रभु में निष्ठा से समग्र समर्पण और उस समर्पण से साधक को अनिर्वचनीय शान्ति एवं सन्तुष्टि मिलती है। इस शान्ति एवं सन्तुष्टि के मिलते ही मन का विक्षेप/विचलन समाप्त हो जाता है।

तात्पर्य यह है कि इष्टदेव/प्रभु में निष्ठा के ही कारण साधक की इच्छा एवं शक्ति उस उच्चतर शक्ति के साथ एक हो जाती है, जिसके परिणामस्वरूप साधक अपनी इच्छा को प्रभु की इच्छा और अपनी शक्ति को उनकी परात्परा शक्ति के अन्दर समाहित कर देता है। इसके बाद वह स्पष्ट रूप से अनुभव करता है–कि वह उच्चतर शक्ति उसके मन, बुद्धि एवं इन्द्रियों के कार्यों का संचालन निष्पक्ष ज्ञान, तटस्थ भाव एवं पूर्ण सफलता से कर रही है, जो उसके आतुर एवं आसक्त अहंकार से कभी भी नहीं किया जा सकता। यही वह स्थिति है–जहाँ से दुःखों से छुटकारा मिलने की शुरूआत होती है। यह सिद्धि का पूर्वरूप है। इस तरह प्रभु में निष्ठा से दुःखों की निवृत्ति और अभीष्टों की सिद्धि होती है।

हमारा स्वभाव कुछ ऐसा विचित्र है कि जो उच्चतर शक्ति हर समय और हर स्थान पर हमेशा कार्यशील है, वह हमें दिखाई नहीं देती। इसका कारण हमारा अहं भावापन्न मन है। वह असाधारण स्तर के अनुभवों का विचार अपने साधारण मन-बुद्धि के सांसारिक स्तर पर करता है। साधारणतया अहंभाव के वशीभूत होकर संकुचित दृष्टिकोण से हम देवी शक्ति को अपनी शक्ति या सामर्थ्य समझ लेते हैं। इसलिए देवी शक्ति का असाधारण एवं व्यापक प्रभाव भी हमें साधारण एवं सीमित लगता है। किन्तु हमें इस तथ्य का ध्यान रखना चाहिए–कि जीवमात्र के जन्म-मृत्यु से लेकर उसके मन, बुद्धि एवं क्रियाकलापों का संचालन कोई उच्चतर शक्ति करती है, जिसके प्रभाव से न केवल जीव, अपितु पूरा जगत क्रियाशील होता है। जो सृष्टि से लेकर प्रलय तक की समस्त

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

गतिविधियों की नियन्ता है। जिसके क्रिया-कलापों को सही ढंग से न समझने के कारण हम उन घटनाओं को महज संयोग मान लेते हैं। उस उच्चतर या दैवी शक्ति से तादात्म्य स्थापित करने, इसका अनिर्बाधित अनुभव करने और इस अनुभूति या दिव्यभाव का संचार करने का मुख्य साधन निष्ठा है।

साधक को यह बात सदैव याद रखनी चाहिए कि जिनको हम अपनी शक्तियाँ समझते हैं–वे सब दैवी शक्ति के ही प्रतिरूप हैं। मन, बुद्धि एवं इन्द्रियों से बने हमारे शरीर में जो कुछ भी घटन-विघटन, विकास-ह्रास का मन्द या तीव्र गति से कार्य हो रहा है, उसका संचालन और नियन्त्रण दैवी शक्ति के हाथ में है। यदि ऐसा न होता और इसका संचालन हमारे मन-बुद्धि के हाथ में होता तो हमें हमेशा मनोनुकूल या इच्छित फल मिल जाता। किन्तु बहुत चाहने और हजार कोशिश करने के बाद भी हमें इच्छित फल नहीं मिलता और लाखों वार न चाहने एवं बचाव करने पर भी अनिच्छित फल मिल जाता है। यह इस बात का साक्ष्य है कि हमारी शारीरिक, मानसिक एवं बौद्धिक शक्ति पूर्णरूपेण हमारे नियन्त्रण में नहीं है, अपितु यह प्रकारान्तर से दैवी नियन्त्रण में है।

जब हमारे अन्दर निष्ठा का उदय होता है, तो हमारी समर्पण की भावना बलवती होती है और अहंभाव तिरोहित हो जाता है। इस स्थिति में साधक समस्त पूर्वाग्रहों से मुक्त होकर तटस्थ भाव से दैवी शक्ति के क्रिया–कलापों एवं उसके असाधारण प्रभाव का अनुभव करता है। इस तथ्य का साक्षात्कार और लगातार अनुभव होने से उसकी दृष्टि एवं आकांक्षा दोनों में क्रांतिकारी परिवर्तन आ जाता है। तब वह न केवल दैवी शक्ति, अपितु उसके मूल-केन्द्र बिन्दु प्रभु के निकट पहुँचने का पूरा प्रयत्न करता है। इस प्रकार निष्ठापूर्वक समर्पण एवं कर्म करने से साधक को निश्चिन्तता, शान्ति एवं सिद्धि मिलती है।

इस प्रसंग में यह बात सदैव ध्यान में रखनी चाहिए कि साधक को साधना के प्रारम्भिक दिनों में आत्मविश्वास के साथ साधना करनी चाहिए और प्रभु की कृपा या निकटता का अनुभव होने पर पूरी निष्ठा से कर्म करना चाहिए। जो साधक प्रभु की निकटता प्राप्त करने से पहले ही निष्ठा कर लेते हैं–वे बहुधा अन्ध-विश्वास में फँसकर दुराग्रही बन जाते हैं। वस्तुतः निष्ठा एवं आत्मविश्वास एक-दूसरे पर आधारित हैं और इनका पूर्वापर सम्बन्ध सुनिश्चित

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

है। इसलिए आत्मविश्वास एवं निष्ठा का साधना की पूर्वापर अवस्था में यथास्थान उपयोग किया जाता है।

यद्यपि आत्मविश्वास एवं निष्ठा के पूर्वापर क्रम में परिवर्तन से साधना द्वारा सिद्धि प्राप्ति में कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ता। किन्तु यह पूर्वापर क्रम पर परिवर्तन साधक की मनोवृत्ति को अवश्य प्रभावित करता है जो साधक साधना के प्रारम्भ में निष्ठा और सिद्धि के बाद आत्मविश्वास का अवलम्बन करता है, वह बहुधा अहंकारी हो जाता है। सभी असुरों एवं राक्षसों ने इस पूर्वापर क्रम को तोड़कर अपनी साधना कर सिद्धियाँ प्राप्त की हैं और इसके परिणामस्वरूप अपने अहंकार के बढ़ जाने से वे अपना और संसार का भला नहीं कर पाये, अस्तु।

सतत अभ्यास

साधना का सबसे प्रमुख अंग सतत अभ्यास है। यह शास्त्रीय ज्ञान पर आधारित होता है और आत्मविश्वास या निष्ठा इसकी शक्ति के मूल-केन्द्र हैं। इसमें तीन तत्व प्रमुख होते हैं–

2. एकाग्रता

1. निरन्तरता,

3. कुशलता

इनमें से आत्मविश्वास से निरन्तरता और निष्ठा से एकाग्रता का विकास होता है, जब कि कुशलता गुरू कृपा, दीक्षा एवं विधि के ज्ञान से आती है। अतः साधना-विज्ञान में गुरू, दीक्षा एवं विधि का विचार करना आवश्यक है।

गुरु

वैसे तो जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में गुरू की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण होती है, पर साधना के क्षेत्र में तो गुरू का महत्व शब्दों में नहीं बतलाया जा सकता। साधन के चयन से लेकर सिद्धि तक की समस्त प्रक्रिया या प्रविधि में हर एक कदम और हर एक क्षण पर गुरू की कृपा सर्वाधिक सहायता करती है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शिष्य के ज्ञान एवं विश्वास को अपनी शक्ति से महनीय शक्ति की और ले जाना और अपने निर्देश, आदर्श आचार एवं गम्भीर ज्ञान से उसकी पूरी-पूरी सहायता करना–यह सब गुरू के वश की ही बात है।

साधना के क्षेत्र में जैसे ज्ञान एवं विश्वास के दो रूप [28] दिखलाई देते हैं–यद्यपि इनमें अभिन्नता-सी होती है, तथापि व्यावहारिक रूप से इनका उपयोग करने के लिए इनको पृथक्-पृथक् माना जाता है–उसी प्रकार यहाँ गुरू भी दो रूपों में हमारी सहायता करते हैं। उनका एक रूप परमगुरू/परमात्मा के रूप में हमारे अन्दर विद्यमान है और दूसरा रूप सांसारिक गुरू के रूप में है, जो साधना के मर्म को समझाने के साथ-साथ प्रत्यक्ष रूप से हम पर अनुग्रह करते हैं।

हमारे परमगुरू अन्तर्यामी प्रभु हैं, जो हमारे अन्दर गुप्तरूप से विराजमान हैं। वे अपने भास्वर ज्ञानदीप से हमारे अज्ञान-तिमिर का नाश करते हैं। उनकी प्रभा हमारे कर्तव्यबोध का प्रकाशस्तम्भ बनती है। यदि इस प्रकाश का साक्षात्कार न हो, तो साधक अहंकार, भ्रान्ति एवं किंकर्तव्यविमूढ़ता के घने अन्धकार में दर-दर की ठोकरें खाता रहे। उनका जो मुक्त, आनन्दमय, सर्वशक्तिमय और अमृतमय स्वरूप है, उसे वे स्वयं खोलकर दिखा देते हैं। उनका यही स्वभाव कृपाभाव कहलाता है।

उनकी कार्यपद्धति असीमित है क्योंकि प्रत्येक पद्धति उनकी अपनी है। सर्वतन्त्र स्वतन्त्रता एवं समग्र ज्ञान के साथ शिष्य की क्षमता एवं उसके हित के अनुरूप किसी भी पद्धति का चयन करने की स्वतन्त्रता के कारण उसकी कोई सीमा तय नहीं की जा सकती। अतः उसकी कार्यपद्धति एवं क्षेत्र अत्यन्त व्यापक और असीमित है।

उनकी विधि क्या है? इसका संक्षेप में उत्तर यह है–कि शिष्य (साधक) की प्रकृति के अन्दर जो ऊँची से ऊँची वृत्ति हो, उसको सहजभाव से सही दिशा-निर्देश देकर लक्ष्य की ओर प्रेरित करना और आवश्यक होने पर उसको स्वयं ले जाना ही उनकी विधि है। उनके सान्निध्यमात्र से छोटी से छोटी बातों

---

28. (1) ज्ञान के दो रूप – 1. अन्तःस्थ ज्ञान एवं 2. बहिस्थज्ञान
(2) विश्वास के दो रूप – 1. आत्मविश्वास एवं 2. प्रभु में निष्ठा

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

और तुच्छ से तुच्छ कार्यों में भी बड़ा परिवर्तन आ जाता है। यह परिवर्तन इन बातों और कार्यों को सुव्यवस्थित कर देता है और इसी व्यवस्था की सहायता से बड़े से बड़ा लक्ष्य प्राप्त किया जाता है।

यह परिवर्तन क्या है?इसका आगमग्रन्थों में विस्तार से वर्णन एवं विवेचन किया गया है, जिसका सारांश यह है–"कि प्रगति एवं लक्ष्य प्राप्ति की पहली क्रिया का नाम परिवर्तन है। क्योंकि परिवर्तन के बिना न तो गति सम्भव है और न ही प्रगति। यदि परिवर्तन को छोड़ दिया जाए, तो गति पूर्णविराम पर पहुँच जायेगी, अस्तु। इस परिवर्तन से केवल गतिशीलता ही नहीं मिलती, अपितु इसका एक महनीय उद्देश्य है, जो साधना में सफलता को रेखांकित करता है। वह यह है–कि साधना में कोई भी चीज इतनी छोटी नहीं होती, कि उसका कोई उपयोग न हो सकता हो और कोई भी चीज इतनी बड़ी नहीं होती, कि जिसके लिए प्रयत्न करना व्यर्थ हो। इस प्रकार साधना में छोटी चीज का उपयोग कर बड़े से बड़ी चीज को पाने का प्रयत्न करना–यह इस परिवर्तन का मूल उद्देश्य है।"

परिवर्तन का विवेचन करते हुए योगिनी हृदय तन्त्र में बताया गया है, कि अपने दृष्टिकोण एवं व्यवहार में लक्ष्य के अनुसार बदलाव करना परिवर्तन है। उदाहरणार्थ–"हम बहुधा कुछ चीजों को तुच्छ या हेय मानकर छोड़ देते हैं और कुछ को बहुत बड़ा एवं अपने सामर्थ्य से बाहर मानकर छोड़ देते हैं। हमारे इस स्वाभाविक दृष्टिकोण में ही परिवर्तन आवश्यक है। क्योंकि जगत में कोई चीज न तो छोटी होती है और न ही बड़ी। प्रत्येक चीज की अपनी उपयोगिता है। इसलिए उसका उपयोग होना चाहिए।" इस विषय में दूसरी महत्वपूर्ण बात यह है–**"कि प्रत्येक प्रयत्न (कर्म) का परिणाम होता है, वह कभी व्यर्थ नहीं जाता।** यह हो सकता है कि कभी-कभी परिणाम मिलने में अधिक समय या शक्ति लगानी पड़े। सत्य यह है कि समय एवं शक्ति को सीमा में न बाँधकर प्रयत्न किया जाए, तो परिणाम अवश्य मिलता है। इसलिए किसी चीज या कार्य को छोटा अथवा बड़ा मानकर छोड़ देने की प्रवृत्ति में परिवर्तन आवश्यक है। गुरू के सान्निध्य से यह सहजरूप में विकसित हो जाता है और यह परिवर्तन साधक के आचार को व्यवस्थित बना देता है। साधना के प्रारम्भिक समय में साधक का व्यक्तिगत प्रयत्न तीव्रतर होता है और उसमें आत्मविश्वास के साथ अहंकार भी विद्यमान रहता है। इस कारण साधक को अन्तर्यामी गुरू की सत्ता का बोध नहीं

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

हो पाता। जैसे मेघ से ढका होने पर सूर्य दिखाई नहीं देता–ठीक वैसे ही अहंकार के आवरण के कारण अन्तर्यामी गुरू का अनुभव नहीं हो पाता। परन्तु जैसे-जैसे साधना में आगे बढ़ने पर अहंकार धीरे-धीरे विगलित होता है और निष्ठा का उदय होता है–वैसे-वैसे हमारी दृष्टि एवं अनुभूति में निर्मलता आने लगती है। दृष्टि की निर्मलता से अन्तर्यामी गुरू के दर्शन होते हैं और एक बार इनके दर्शन होने के बाद गुरू का सान्निध्य और उनकी कृपा साधक के अभिन्न साधन बन जाते हैं। किन्तु जब तक साधक इस अवस्था को प्राप्त नहीं करता, तब तक उसके अहंकार एवं अज्ञानजन्य कर्मों को व्यवस्थित करने और उसको सही दिशा-निर्देश देने के लिए लौकिक गुरू की आवश्यकता है। लौकिक गुरू के द्वारा ही शास्त्र, साधन एवं साधना की प्रविधि का ज्ञान होता है। वे हमारी द्विविधिओं और असुविधाओं को अपने वात्सल्य भाव से विश्वास में परिणत कर साधना के मर्म को समझाते हुए हमें लक्ष्य की ओर बढ़ाते हैं।

साधना के प्रारम्भिक दिनों में साधक में एक उत्कट आकांक्षा और विश्वास का भाव दिखलाई देता है। किन्तु उसके प्रयास, प्रक्रिया एवं ज्ञान में अनिश्चितता रहने के कारण विचलन बना रहता है। उस समय उसको सफलता और विफलता के मर्म का बोध नहीं रहता। यह मर्म साधक को लौकिक गुरू से मिलता है। इसके अलावा साधक को जिस-जिस चीज से हानि होती है, जो कुछ उसके मार्ग में बाधक होता है और जहाँ-जहाँ उनके पैर लड़खड़ाते हैं–उन सब को गुरूदेव ही सम्भालते हैं। इतना गुरूतर दायित्व निभाने के कारण ही उन्हें गुरू कहा जाता है।

मनुष्य के लिए अपने अन्दर अवस्थित किसी अदृश्य सत्ता पर विश्वास करना बहुधा कठिन होता है। किन्तु किसी ऐसी सत्ता पर विश्वास करना सरल होता है, जो उसके अन्दर नहीं अपितु बाहर और सामने हो। इसीलिए साधना के प्रारम्भ में बाह्य-आश्रयों का श्रद्धा एवं विश्वास के साथ उपयोग किया जाता है। लौकिक-गुरू, देवमूर्ति, यन्त्र एवं दिव्यदेश [29] ऐसे ही आश्रय हैं, जिनका पूरी श्रद्धा एवं विश्वास के साथ उपयोग करने से साधक सिद्धि के शीर्ष स्तर तक पहुँच जाता है।

29.तीर्थ, पीठ एवं मन्दिर आदि।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

साधना में केवल भारतीय चिन्तन-धारा ने ही बाह्य-आश्रयों का सहारा लिया हो–ऐसी बात नहीं है। मानवमात्र ने अपनी आध्यात्मिक उन्नति के लिए हमेशा-हमेशा से बाह्य-आश्रयों का सहारा दिया है। इसीलिए सभी धर्मों में मन्दिर, मस्जिद, गिरजा, गुरूद्वारा, मूर्ति, यन्त्र, चित्र, काबा, ज्योतिर्लिंग, काशी, मदीना, जेरूशलम, अवतार, पीर, पैगम्बर, तीर्थंकर, नबी एवं गुरू की महिमा का श्रद्धापूर्वक वर्णन करते हुए अपने-अपने धर्म के अनुसार उनका आश्रय लिया जाता है।

यदि कदाचित बाह्य-आश्रयों का सहारा न होता तो सम्भवतः न धर्म होता और न ही साधना जैसी कोई आध्यात्मिक एवं मार्मिक क्रिया ही होती। आज धर्म, अध्यात्म, योग, जप, यज्ञ, मन्त्र, यन्त्र एवं तन्त्र की साधना की परम्परा हजारों-लाखों वर्षों के बाद भी हमें इसीलिए प्राप्त हो रही है, क्योंकि इनका कोई न कोई बाह्य-आश्रय हमारे आसपास के वातावरण में हमारे सामने विद्यमान है और उस पर हमारी अटूट श्रद्धा एवं विश्वास है।

इसीलिए लौकिक गुरू पर, जो कि बाह्य-आश्रय हैं–पूरी श्रद्धा एवं अटूट विश्वास किया जाता है। सभी धर्मों और साधना के सभी सम्प्रदायों में गुरू की महिमा अपरम्पार है। गुरू लौकिक हो या अन्तर्यामी–वे ब्रह्मा, विष्णु, शिव एवं परब्रह्म के समान हैं।[30] वे अज्ञान एवं अहं के आवरण को हटाकर सत्य एवं ज्ञान का उपदेश देते हैं। उनकी कृपा के बिना इस संसार की दल-दल से निकला नहीं जा सकता। इसलिए उनका आश्रय लेना चाहिए।

क्या लौकिक एवं अन्तर्यामी गुरू में से लौकिक गुरू को अपूर्ण माना जा सकता है?और यदि नहीं तो क्यों?इस प्रश्न का आगम ग्रन्थों में गम्भीरतापूर्वक विचार कर निष्कर्ष रूप में बतलाया गया है–कि साधक पूर्णता का आश्रय लेकर पूर्ण और अपूर्णता का आश्रय लेकर अपूर्ण बन सकता है। अतः साधक का धर्म है, कि वह शास्त्र, गुरू, मूर्ति, यन्त्र, पीठ एवं तीर्थ आदि लौकिक साधनों में पूर्णता एवं दिव्यता का भाव रखे। वस्तुतः बाह्य शास्त्र एवं अन्तर्ज्ञान और लौकिक एवं अन्तर्यामी गुरू में कभी भी भेद– बुद्धि नहीं रखनी चाहिए।

30. गुरूर्ब्रह्मा गुरूर्विष्णुः गुरूर्देवो महेश्वरः।
गुरूः साक्षात्परब्रह्म................।।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सम्भवतः इसीलिए हिन्दू, मुस्लिम, सिख, ईसाई, जैन, बौद्ध एवं पारसी आदि सभी धर्मों में लौकिक गुरू को प्रभु के बराबर माना जाता है। कारण यह है कि प्रभु मनुष्य की आवश्यकतानुसार अपने आपको देवता, अवतार, पैगम्बर, नबी या गुरू के रूप में प्रकट करते हैं और उनके इस लौकिक रूप का आश्रय साधक की सर्वाधिक सहायता करता है।

मनुष्य का स्वभाव ही कुछ ऐसा है कि वह मानवीय रूप से सरलतापूर्वक सामञ्जस्य बना लेता है। यही कारण है, कि विष्णु के दस-अवतारों में से राम, कृष्ण आदि मानवीय अवतारों की मूर्तियों की पूजा घर-घर में होती है। हमारे आस-पास उनके अनेक मन्दिर बने हुए हैं। जब कि मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह एवं हयग्रीव जैसे मनुष्येत्तर अवतारों के न तो उतने मन्दिर हैं और न ही घर-घर में उनकी मूर्तियों की पूजा होती है। इसलिए साधना में उसी आश्रय को जो दिव्य भावापन्न होने के साथ-साथ मानव मात्र के अति समीप हो, मानवीय प्रकृति के अनुरूप हो और मानवीय क्षमता के अतीत न हो–को आधार बनाया गया है। मनुष्य की इसी मानवीय भावना की पूर्ति के लिए भगवान मनुष्य रूप में अवतार लेते हैं। हिन्दू धर्म के अलावा अन्य धर्मों में भी इस मानवीय स्वभाव के आधार पर तीर्थंकर, पैगम्बर, नबी एवं गुरू के रूप में उनका आश्रय लिया जाता है।

जैसी अभिन्नता भगवान् और उनके अवतारों में होती है–वैसी ही अभिन्नता अन्तर्यामी एवं लौकिक गुरू में होती है। कारण यह है कि सांसारिक व्यक्ति को साधना में ऐसा मार्ग निर्देशक एवं संरक्षक चाहिए, जो सजीव हो, जिसका स्वभाव उसके अनुरूप हो और जो प्रकट रूप से उसकी सहायता कर सके। ऐसे बहुत कम लोग हैं, जो अवतारों, तीर्थंकरों, पैगम्बरों या प्राचीन गुरूओं की शिक्षा के अनुसार निःशंक, निर्बाध एवं निरन्तर साधना कर सकते हैं। साधना के क्षेत्र में शंका एवं बाधाएं कदम-कदम पर आती हैं। इन शंकाओं और बाधाओं का समाधान कर साधना को निरन्तर आगे बढ़ाने के लिए साधक को लौकिक गुरू का आश्रय चाहिए। लौकिक गुरू को शास्त्रीय ज्ञान, साधना की प्रविधि, सदाचार एवं सात्विक-भाव सम्पन्न होने के कारण अन्तर्यामी या परमगुरू के समकक्ष माना जाता है। गुरू, देवता और भगवान् में गुरू का प्रथम स्थान है। क्योंकि इनके बिना देवता एवं भगवान को नहीं पाया जा सकता।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

दीक्षा

तन्त्रागम के अनुसार शिष्य का समर्पण एवं गुरू का वात्सल्य–इन दोनों सात्त्विक भावनाओं का संगम दीक्षा कहलाता है। योगिनी हृदय के अनुसार शिष्य की श्रद्धा और गुरूदेव की कृपा–इन दोनों धाराओं का मिलन दीक्षा है। वस्तुतः मन्त्र शास्त्र के अनुसार 'दी' वर्ण - ज्ञान, शक्ति एवं सिद्धि के दान का और 'क्ष' अज्ञान, पाप एवं दौर्भाग्य के क्षय का सूचक है। इसलिए दीक्षा से ज्ञान, शक्ति एवं सिद्धि मिलती है और अज्ञान, पाप एवं दौर्भाग्य का नाश होता है। क्योंकि दीक्षा एक ऐसा व्यावहारिक प्रशिक्षण है, जिसके द्वारा गुरू अपने शिष्य में प्रसुप्त ज्ञान एवं शक्तियों का उद्‌बोधन करते हैं। अतः सभी साधकों को दीक्षा अनिवार्य है।

शारदापटल में सभी प्रकार के साधकों के लिए दीक्षा के महत्व एवं उपयोगिता का विस्तार से विवेचन किया गया है, जिसका सारांश यह है–"दीक्षा से देह की समस्त अशुद्धियाँ मिट जाती हैं और शुद्ध देह से देव पूजन का अधिकार मिलता है। देवपूजन एवं मन्त्रजप से मन के मैल धुल जाते हैं, तब साधक को इष्ट देव की कृपा प्राप्त होती है। अतः देव कृपा एवं सिद्धि के लिए दीक्षा अनिवार्य है।"

तन्त्रागम में दीक्षा और शक्तिपात एक-दूसरे के पर्याय हैं। यह एक गुरूत्तर प्रक्रिया है, जो सिद्ध-गुरू के द्वारा ही सम्भव है।

तन्त्रालोक में इस प्रकार की दीक्षा के तीन भेद बताए गए हैं-

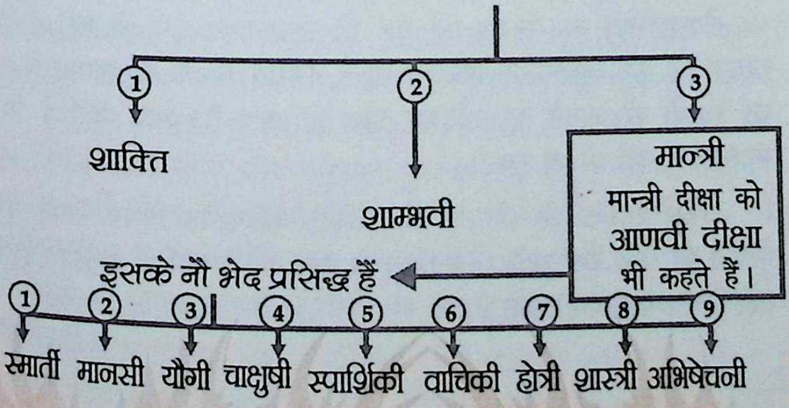

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इन सभी दीक्षाओं में सिद्ध गुरू अपने शिष्य की कुण्डलिनी का जागरण कर षड्चक्रों का वेधकर शक्तिपात कर देते हैं और शिष्य तत्काल सहस्रार से टपकने वाले अमृत का पान कर धन्य एवं कृतकृत्य हो जाता है। किन्तु ऐसे दीक्षा देने वाले सदगुरू एवं भाग्यवान शिष्य बिरले ही होते हैं।

मन्त्र साधना में चार प्रकार की दीक्षाओं का परम्परा से प्रचलन है-

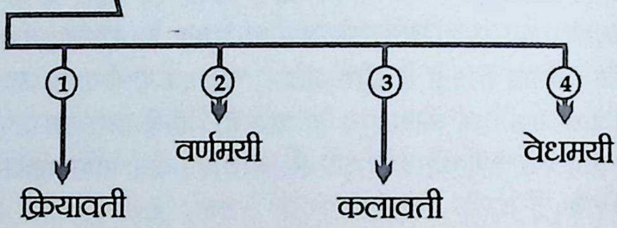

क्रियावती दीक्षा में कर्मकाण्ड के अनुसार हवन एवं पूजन के साथ दीक्षा सम्पन्न होती है। वर्णमयी दीक्षा में गुरू अपने शिष्य के अंगों पर विधिवत न्यास कर दीक्षा देते हैं।

कलावती दीक्षा में–निवृत्ति, प्रतिष्ठा, विद्या, शान्ति एवं कला–इन पाँच शक्तियों का संचार कर उन्हें शिवतत्व में विलीन कर मन्त्र-दीक्षा दी जाती है। यह दीक्षा गुरू-कृपा से सम्भव है और वेधमयी दीक्षा में सद्गुरू षड्चक्रों का वेधकर शिष्य में शक्तिपात कर देते हैं। यह दीक्षा बड़े भाग्य से मिलती है।

मन्त्र साधना के लिए दीक्षा कैसी भी हो, वह अवश्य होनी चाहिए। क्योंकि यह केवल शिष्य का समर्पण एवं गुरू की वात्सल्यमय कृपा ही नहीं, अपितु साधना का एक व्यावहारिक प्रशिक्षण भी है, जिससे साधक को साधना के मर्म एवं रहस्यों को जानने का अधिकार प्राप्त हो जाता है। अतः दीक्षा के बिना मन्त्रसाधना नहीं की जा सकती।

किस साधक को कौन-सी दीक्षा लेनी चाहिए?यह निर्णय अपने पूज्य गुरूदेव पर छोड़ देना चाहिए। वे शिष्य के ज्ञान एवं सामर्थ्य के अनुसार इसका सही निर्णय स्वयं कर सकते हैं।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मन्त्र साधना की विधि

मन्त्र साधना में तीन बातें सबसे महत्वपूर्ण है -

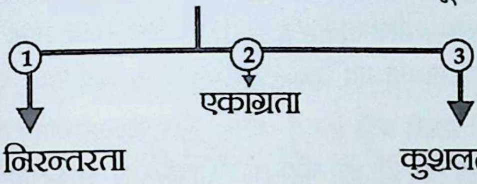

इनमें से आत्मविश्वास से निरन्तरता, निष्ठा से एकाग्रता एवं साधना की विधि की जानकारी से कुशलता का विकास होता है। साधना की सफलता एवं विफलता का पूरा का पूरा दारोमदार इसके विधि-विधान की जानकारी पर निर्भर करता है। मन्त्रसाधना की विधि गोपनीय है। इसलिए यह रहस्यपूर्ण भी है। मन्त्रशास्त्र हर किसी को इसकी जानकारी नहीं देना चाहता, ताकि इसके दुरुपयोग से बचा जा सके। किन्तु जिन लोगों में पात्रता है– उनको यह विधि-विधान बताने में न कोई शंका है और न ही इसका निषेध।

साधना की विधि का निरूपण करने से पहले सद्गुरू एवं शिष्य का विचार करना आवश्यक है। वैसे तो यह विचार दीक्षा से पहले ही कर लेना चाहिए। किन्तु यदि दीक्षा के समय किए गए विचार में यदि कोई भूल-चूक रह जाए, तो साधना का विधि-विधान बताने से पहले इसका सुधार किया जा सकता है। मन्त्र एवं तन्त्र के ग्रन्थों में यह एक वाक्य बार-बार दुहराया जाता है– "गोपनीयं गोपनीयं गोपनीयं प्रयत्नतः"–इसका अर्थ है कि (इस विद्या को) प्रयत्नपूर्वक गोपनीय रखना चाहिए। यहाँ 'गोपनीय' पद का तीन बार प्रयोग किया गया है। जिसका परम्परागत अर्थ है कि दीक्षा के समय, साधना का विधि-विधान बताते समय और अनुष्ठान/पुरश्चरण के रहस्यों को बताते समय गुरू को अपने शिष्य की पात्रता में जरा-सा भी सन्देह हो तो इस विद्या को गोपनीय रखना चाहिए। क्योंकि जब तक शिष्य को इन तीनों स्थितियों के मर्म एवं रहस्यों की जानकारी नहीं हो जाती–वह साधना के मार्ग से लक्ष्य तक पहुँच नहीं सकता।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

साधना की विधि का प्रतिपादन करने से पूर्व आज के सन्दर्भ में गुरू एवं शिष्य की स्थिति का विचार कर लेना आवश्यक है। इस युग को पता नहीं क्यों प्रगति का युग कहा जाता है। जब आज समाज एवं मानव जाति में स्वार्थ, लालच, धूर्तता, तनाव, असन्तोष एवं निराशा अपने चरम बिन्दु के आस-पास हैं। वस्तुतः यह युग साधना एवं अध्यात्म की दृष्टि से अधःपतन का युग है।

इस युग की सबसे बड़ी देन है–धोखा और विश्वासघात। आज ऐसे बहुत सारे लोग प्रकट हो गए हैं, जो स्वयं को भगवान् का सन्देशवाहक या भगवान् बताकर भोले-भाले लोगों को ठग रहे हैं। सांसारिक कष्टों से पीड़ित एवं सरल स्वभाव वाले लोग इनकी मीठी-मीठी बातों में आकर अथवा उनके आडम्बर में फंस कर अपना सब कुछ लुटा देते हैं और अन्त में "माया मिली न राम" की कहावत को चरितार्थ करते हैं।

सद्गुरू एवं शिष्य के लक्षणों का मन्त्र शास्त्र में जितने विस्तार से विचार किया गया है वह एक शोध प्रबन्ध के कलेवर में भी नहीं समा सकता। किन्तु इसका सारगर्भित तत्व कुलार्णव में इस प्रकार बताया गया है–जो विद्वान् वेद एवं वेदांगों का वेत्ता, सरलचित्त, मन्त्रशास्त्रज्ञ, उदार स्वभाव एवं परोपकारी हो और जिसके आचार–विचार एवं ज्ञान में अद्भुत आकर्षण हो, तथा जिनके व्यक्तित्व के स्मरण मात्र से सन्तुष्टि मिलती हो–साधक के लिए वही सद्गुरू है। शिष्य के लक्षणों में शालीनता, विनय, बुद्धि, निष्ठा एवं लगन उसके प्रमुख गुण होते हैं, जबकि स्वार्थ, लालच, व्यामोह, अहंकार एवं आलस्य उसके प्रमुख दोष होते हैं। इन लक्षणों के आधार पर गुरू एवं शिष्य का विचार किया जा सकता है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

10

साधना विधि के सोलह अंग

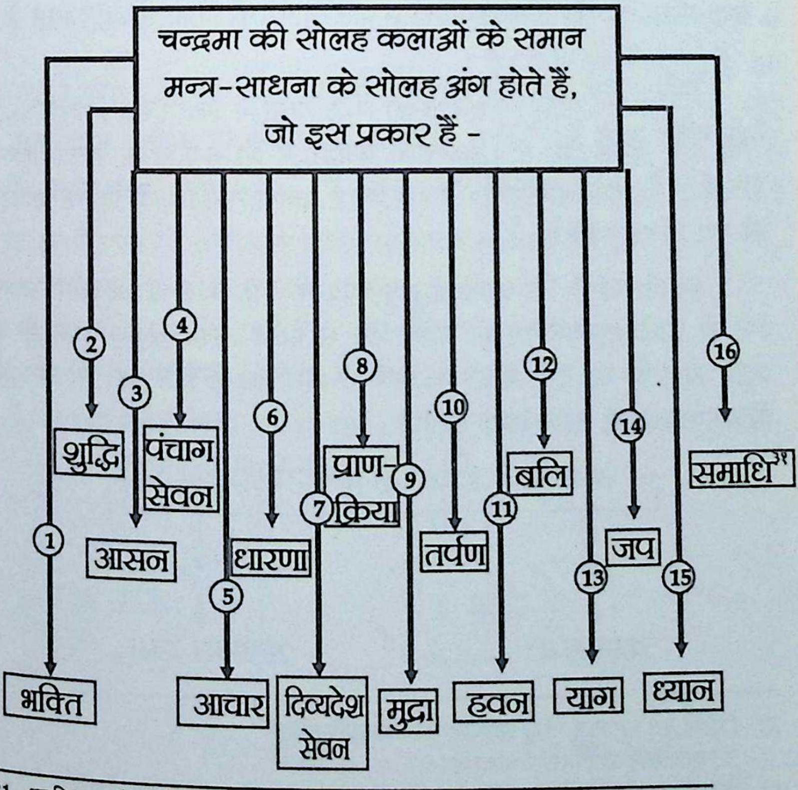

31. भवन्ति मन्त्रयोगस्य षोडशाङ्गानि निश्चितम्। यथा सुधांशोर्जायन्ते कलाः षोडशशोभनाः।।
भक्तिः शुद्धिश्चासनं पञ्चाङ्गस्यापि सेवनम्। आचार धारणे दिव्यदेशसेवनमित्यपि।।
प्राणक्रिया तथा मुद्रा तर्पणं हवनं। बलिः। यागो जपस्तथा ध्यानं समाधिश्चेति षोडशः।।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भक्ति

इष्टदेव में परम अनुराग या परम प्रेम को भक्ति कहते हैं।[32]
यह तीन प्रकार की होती है-

1. वैधी भक्ति
2. रागात्मिका भक्ति
3. परा भक्ति

वैधी भक्ति को गौणी भक्ति और परा भक्ति को शुद्धा भक्ति भी कहते हैं।

विधि-निषेधों द्वारा निर्णीत धीर साधकों द्वारा अपनायी गयी भक्ति को वैधी भक्ति कहते हैं।[33] जिस भक्ति का आस्वादन कर साधक भाव-सागर में डूब जाता है, उसे रागात्मिका भक्ति कहते हैं।[34] और परम आनन्ददायक भक्ति को परा भक्ति कहते हैं।[35]

तात्पर्य यह है कि अपने प्रभु/इष्टदेव के प्रति भाव या अनुराग उत्पन्न होने से पहले शास्त्राध्ययन या महिमाज्ञान से प्रेरित होकर भजन-पूजन में जो प्रवृत्ति होती है-वह वैधी भक्ति कहलाती है और देव के प्रति भाव उत्पन्न होते ही यह रागात्मिका भक्ति कही जाती है।

रागात्मिक भक्ति दो प्रकार की होती है-

1. कामरूपा
2. सम्बन्ध रूपा

---

32. (1) देवे परोऽनुरागस्तु भक्ति संप्रोच्यते बुधैः-मन्त्रयोग संहिता
(2) सात्वस्मिन् परमप्रेमरूपा-भक्ति सूत्र।
33. विधिना या विनिर्णीता निषेधेन तथा पुनः। साध्यमाना च या धीरैः सा वैधी भक्तिरुच्यते।।
34. यथास्वाद्य रसान्भक्तेर्भवे मज्जति साधकः। रागात्मिक सा कथिता भक्तियोगविशारदैः।।
35. परमानन्दप्रदा भक्ति पराभक्तिर्मता बुधैः।।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जिस भक्ति में भक्त की प्रत्येक चेष्टा अपने आराध्य देव के सुख के लिए होती है–अर्थात् जब भक्त का काम प्रेमरूप में परिणत हो जाता है, तब वह भक्ति कामरूपा रागात्मिका भक्ति कहलाती है और जिस भक्ति में–"मैं अपने आराध्य देव का पुत्र, प्रियतम, प्रियतमा या सखा हूँ"–ऐसी दृढ़ बुद्धि हो जाती है–उसको सम्बन्ध रूपा रागात्मिक भक्ति कहते हैं।

आराध्य देव के प्रति यह राग जब पुष्ट होकर शनैः शनैः अनुराग, प्रेम एवं परम प्रेम में परिणत हो जाता है, तब यही भक्ति परा भक्ति कहलाती है। भाव की परिपक्वावस्था का नाम है राग। इसमें उत्कण्ठा एवं छटपटाहट रहती है। जब साधक को अपने इष्टदेव के दर्शन एवं सेवा के बिना न रहा जाता हो, तब उसका आराध्य के साथ राग है–ऐसा समझना चाहिए। जब तक राग रहता है भक्ति भी रागात्मिका होती है और जब यह राग अनुराग या प्रेम में परिणत हो जाता है, तब साधक में न छटपटाहट रहती न कोई आकांक्षा। वह परमानन्द के सागर में हिलोरें खाने लगता है। इस स्थिति में साधक विघ्न–बाधा से नहीं डरता, देरी होने से विचलित नहीं होता और परिणाम न मिलने पर भी वह स्वयं को नहीं बदलता। ये सब प्रेम के चिन्ह हैं और ऐसी भक्ति परा भक्ति कहलाती है।

शुद्धि

अत्यन्त निर्मलता को शुद्धि कहते हैं।

मन्त्र साधना में चार प्रकार की शुद्धियों का विचार किया जाता है-

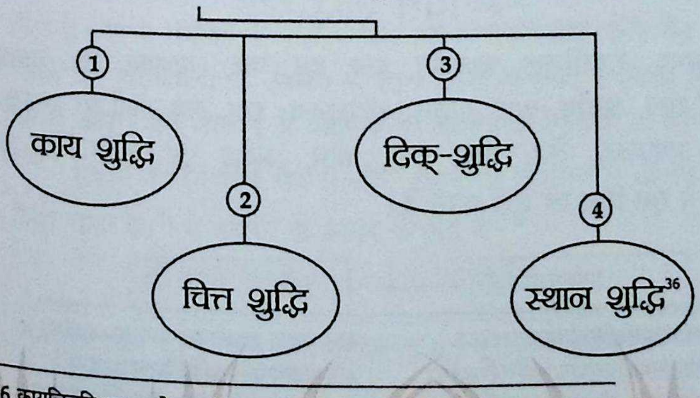

36.कायचित्तदिशास्थानभेदाच्छुद्धिश्चतुर्विधा।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कायशुद्धि

स्नान के द्वारा काया या शरीर शुद्ध होता है। मल के प्रक्षालन को स्नान कहते हैं। अतः स्नान करने से शरीर निर्मल हो जाता है।

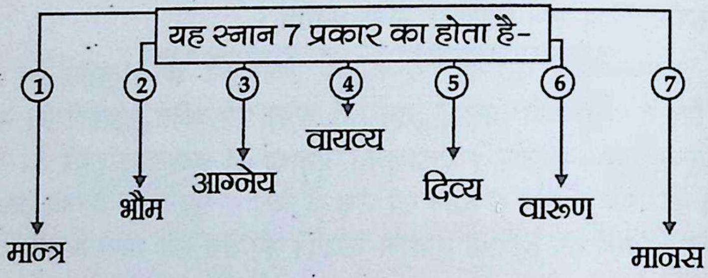

"आपोहिष्ठा मयो भुवः°" इत्यादि मन्त्रों से मार्जन को मान्त्र स्नान कहते हैं। उबटन, मुल्तानी मिट्टी या रीठा लगाकर रगड़-रगड़ कर नहाने को भौम स्नान कहते हैं। शरीर के अंग-प्रत्यंग पर भस्म लगाना आग्नेय स्नान होता है।

गाय के खुरों से उड़ी हुई धूल से नहाना वायव्य स्नान होता है। धूप या वर्षा से नहाना दिव्य स्नान कहलाता है। जल में डुबकी लगाकर नहाना वारुण स्नान कहा जाता है और अपने आराध्य देव का स्मरण मानस स्नान कहलाता है। इन रीतियों से स्नान करने से काया शुद्ध हो जाती है।

चित्त शुद्धि

अभय, रागरहितता, ज्ञानयोग, दान, दम, यज्ञ, स्वाध्याय, तप, नम्रता, अहिंसा, सत्य, अक्रोध, त्याग, शान्ति, अपिशुनत्व, दया, सब जीवों पर अनुग्रह, मृदुता, अचपलत्व, तेज, क्षमा, धृति, शौच, अद्रोह एवं अतिमानिता का अभाव–ये सब चित्त को शुद्ध करते हैं।[37]

---

37. "अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितः। दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम्।।
अहिंसासत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम्। दया भूतेष्वगृहत्वं मार्दवं ह्रीरचापलम्।।
तेजः क्षमा घृतिः शौचमद्रोहो नाऽतिमानिता। भवन्ति सम्पदो दैव्यश्चित्तनैमल्यकारणम्।।"

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

दिक् शुद्धि

दिक् शुद्धि द्वारा साधक का मन वश में हो जाता है और उसको साधना में सिद्धि मिलती है। अतः प्रयत्नपूर्वक दिक् शुद्धि करनी चाहिए।[38]

दिन में पूर्वाभिमुख बैठकर तथा रात्रि में उत्तराभिमुख बैठकर जप, पूजन एवं हवन आदि करना दिक् शुद्धि कहलाता है। काम्य प्रयोगों में निर्धारित दिशा की ओर अभिमुख होकर अनुष्ठान करना दिक् शुद्धि कहलाता है।[39]

स्थान शुद्धि

स्थान को झाड़ना, पोंछना, धोना एवं गोबर से लीपना-पोतना स्थान-शुद्धि कहलाती है। यह दो प्रकार की होती है—

सामान्य | विशेष

स्थान को झाड़, पोंछ एवं धोकर साफ-सुथरा रखना सामान्य शुद्धि है, जब कि अनुष्ठान एवं पुरश्चरण के समय **"अपसर्पन्तु ये भूता° और अपक्रामन्तु भूतानि°"** इन मन्त्रों से विघ्नोत्सारण करना विशेष स्थान शुद्धि होती है।[40]

आसन

मन्त्र साधना में रेशम, कम्बल, कुशा, बाघम्बर, मृगचर्म का आसन श्रेष्ठ होता है। काम्य प्रयोगों में लाल कम्बल का आसन प्रशस्त होता है। कृष्णाजिन (काले मृग की खाल) के आसन से ज्ञान सिद्धि बाघम्बर से मोक्ष, कुशासन से दीर्घायु और रेशमी आसन से व्याधियों का नाश होता है।

सकाम एवं निष्काम भेद से और कामना के तारतम्य से आसन का निर्णय किया जाता है।[41] ये आसन दो प्रकार के होते हैं—

1. बैठने के और → 2. योगासन

38. "दिक् शुद्ध्या साधकः सिद्धिं साधने लभतेऽञ्जसा। मनश्च वश्यतां यातीत्यतः कार्या प्रयत्नतः।।"
39. देखिए–मन्त्र महोदधि, तरंग-26
40. तत्रैव तरंग-21
41. "सकामाकामभेदेनोपासनायाश्च भेदतः। कामनातारतम्याच्च निर्णीतान्यासनानि वै।।"

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

बैठने वाले आसनों का विचार ऊपर किया जा चुका है। विविध काम्य प्रयोगों के अनुष्ठान में इन योगासनों का उपयोग किया जाता है, यथा शान्ति के लिए पद्मासन, वशीकरण के लिए स्वस्तिकासन, स्तम्भन के लिए विकटासन, विद्वेषण के लिए कुक्कुटासन, उच्चाटन के लिए वज्रासन, मारण के लिए भद्रासन एवं अन्य अनुष्ठानों में सुखासन का उपयोग किया जाता है।[42] अभिचारों को छोड़कर सभी सकाम और निष्काम साधना में पद्मासन एवं स्वस्तिकासन को उपयोगी माना गया है।

पचांग सेवन

गीता, सहस्रनाम, स्तव, कवच एवं हृदय–इन पांचों को पञ्चाङ्ग कहते हैं।[43] अपने सम्प्रदाय के अनुसार गीता का स्वाध्याय एवं मनन करने से, सहस्रनाम का पाठ करने से और अपनी कल्पोक्त पद्धति के अनुसार स्तोत्र, कवच एवं हृदय का पाठ करने से साधक पापरहित होकर सिद्धि प्राप्त करता है।[44]

पञ्च देवोपासना में श्रीमद् भगवत गीता, गणेश गीता, भगवती गीता, सूर्य गीता एवं शिव गीता– ये पाँच गीताऐं मानी जाती हैं। विष्णु सहस्रनाम, गणेश सहस्रनाम, दुर्गा सहस्रनाम, सूर्य सहस्रनाम एवं शिव सहस्रनाम–ये पाँच सहस्रनाम प्रसिद्ध हैं। किन्तु इन पाँचों देवताओं के स्तव, कवच एवं हृदय अनेक मिलते हैं। इनमें से जो स्तव आदि अपने सम्प्रदाय में परम्परा से प्रचलित या उपासना के भेद से गुरू द्वारा उपदिष्ट हो, साधक को उनका नियमित रूप से पाठ करना चाहिए।

आचार

मन्त्र-साधना में मुख्य रूप से तीन आचार प्रचलित हैं–

1. वामाचार
2. दक्षिणाचार
3. दिव्याचार

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तन्त्रागम के अनुसार वामाचार एवं दक्षिणाचार परस्पर भिन्न होते हुए भी अन्त में एक लक्ष्य (मोक्ष) पर ले जाते हैं। इनमें भेद यह है, कि वामाचार प्रवृत्ति मूलक है, जब कि दक्षिणाचार निवृत्ति मूलक है। प्रवृत्ति अपने स्वभाव से लोगों को अपनी ओर आकर्षित करती है। किन्तु इसके आकर्षण में आकर साधक सांसारिक भोगों में फँस सकता है। अतः संसार के भोगों से बचने के लिए इस वामाचार में साधक को वीर[45] होना चाहिए। इसीलिए इस आचार को वीराचार कहते हैं।

दिव्याचार उक्त दोनों आचारों के अविरूद्ध है। यह प्रवृत्ति एवं निवृत्ति दोनों मार्गों का आवश्यकता के अनुसार उपयोग करता है। अतः दिव्य कहा जाता है। साधक को अपने गुरू की आज्ञानुसार आचार का चयन करना चाहिए और गुरू को शिष्य की प्रकृति, अभिरूचि एवं क्षमता के साथ निष्काम एवं सकाम उपासना के भेद को ध्यान में रखकर आचार का उपदेश देना चाहिए।

धारणा

श्रद्धापूर्वक एकाग्रता का विधिवत् अभ्यास करने से धारणा की सिद्धि हो जाती है।

धारणा दो प्रकार की होती है—

बाह्य धारणा — आभ्यन्तर धारणा

बाह्य वस्तुओं एवं बाह्य आश्रयों के साथ मनोयोग होने से बहिर्धारणा और अन्तर्जगत् के साथ मनोयोग होने से अन्तर्धारणा बनती है। यह धारणा मन्त्र-साधना में सर्वाधिक सहायता करती है। धारणासिद्धि की स्थूल एवं सूक्ष्म सभी क्रियाएँ गुरूदेव से विधिवत् सीख कर मन्त्र-साधना करनी चाहिए। वस्तुतः धारणा साधना के मार्ग का वह पड़ाव है जहाँ से मार्ग विभाजित होकर एक ओर सांसारिक सिद्धि और दूसरी ओर आध्यात्मिक सिद्धि की ओर जाता है। अतः यहाँ साधक को सावधानी, संतुलन एवं गुरूदेव के प्रति समर्पण का अवलम्बन करना चाहिए।

---

45. जो साधक अपने निर्धारित लक्ष्य एवं मार्ग से जरा-सा भी इधर-उधर न हो—वह वीर कहलाता है। – तन्त्रालोक

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

धारणा सिद्ध होने से साधक को ध्यान सिद्धि एवं मन्त्र सिद्धि मिल जाती है। इसके साथ-साथ धारणा-सिद्धि से भक्ति, आचार, प्राणसंयम, इष्टदेव का साक्षात्कार एवं दिव्य देश में देव शक्ति, का आभास होने लगता है।[46]

दिव्यदेश सेवन

अग्नि, जल, लिंग, स्थण्डिल, कुण्ड, पट, मण्डल, विशिखा, नित्ययन्त्र, भावयन्त्र, पीठ, विग्रह, विभूति, नाभि, हृदय एवं मूर्धा—इन सोलह को दिव्यदेश कहते हैं।[47] साधक को अपने अधिकार के अनुसार दिव्यदेश में पूजा एवं उपासना करनी चाहिए। जगत् में जिस-जिस स्थान से देवता का आविर्भाव होता है, वह दिव्यदेश कहलाता है। जैसे गाय के पूरे शरीर में व्याप्त होने पर भी दूध केवल उसके थनों से निकलता है, उसी प्रकार सर्वव्यापी परमात्मा भी दिव्यदेश में साधक के सामने प्रकट होता है।

वस्तुतः धारणा की सहायता से दिव्यदेश में इष्टदेव का साक्षात्कार होता है।[48] अतः मन्त्र साधना में दिव्य देश सिद्धिदायक माना गया है।

प्राण क्रिया

मन, प्राण एवं वायु में अभेद सम्बन्ध माना गया है। वायु एवं प्राण में कार्य-कारण सम्बन्ध होता है। अतः प्राणायामपूर्वक न्यासों को करना प्राण-क्रिया कहलाता है।

---

46. "धारणासिद्धिमासाद्य सिद्धिं वै ध्यानमन्त्रयोः।
प्राप्नोति साधको नित्यं मन्त्रयोगपरायणः।।
भक्तिर्जपस्य संसिद्धिराचारः प्राण संयमः।
साक्षात्कारो देवताया, दिव्यदेशेषु नित्यशः।।
देवशक्तिविकासो वै हीष्टदर्शनमेव च।
लभ्यन्ते धारणासिद्ध्या सर्वाणति विनिश्चयः।।"

47. "तन्त्रेषु दिव्यदेशाः षोडशा प्रोक्ताः यथाऽत्र कथ्यन्ते।
अग्न्यम्बु लिंगवेद्यो भित्ती रेखा तथा च चित्रं चं।।
मण्डलविशिखौ नित्ययन्त्रं पीठं च भावयन्त्रं च।
मूर्तिर्विभूतिनाभि हृदयं मूर्धा च षोडशैते स्युः।।"

48. "धारणासहकारेण दिव्यदेशे प्रकाशते।
इष्टदेवो मन्त्रयोगे दिव्यदेशो हितप्रदः।।"

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मन्त्रसाधना में प्राणायाम अत्यन्त उपयोगी है। साधक को सहज प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिए। प्रणव एवं व्याहृतियों (**ॐ भूः ॐ भुवः ॐ स्वः**) के साथ तीन बार गायत्री मन्त्र का जप करते हुए पूरक फिर तीन बार गायत्री मन्त्र के जप से कुम्भक एवं रेचक करना चाहिए। कुछ आचार्यों का मत है कि पूरक, कुम्भक एवं रेचक की सन्धियों में भी तीन-तीन बार गायत्री मन्त्र का जप करना चाहिए। विभिन्न सम्प्रदायों की साधनाओं में प्राणायाम के विविध भेद प्रचलित हैं। उनमें से साधक को अपने सम्प्रदाय एवं गुरूपरम्परा के अनुसार प्रचलित प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिए।

मन्त्र साधना में न्यास की बड़ी महिमा है। न्यास साधक को मन्त्रमय एवं देवमय बनाकर देवपूजन तथा मन्त्र जप का अधिकार देता है। मन्त्र शास्त्र में असंख्यक न्यासों का वर्णन मिलता है,

उनमें से सात न्यास प्रमुख हैं-

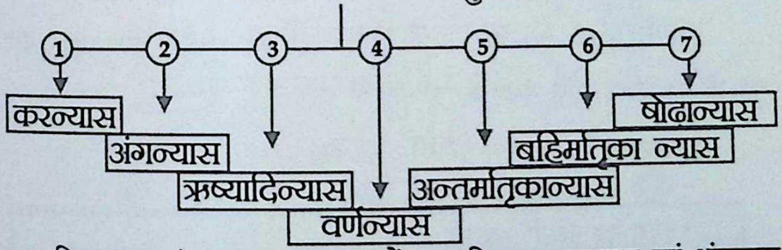

नित्यपूजा एवं साधारण उपासना में ऋष्यादिन्यास, करन्यास एवं अंगन्यास ही करने चाहिए और मन्त्र साधना के अनुष्ठान एवं पुरश्चरण में इनके अलावा वर्णन्यास अन्तर्मातृका, बहिर्मातृका न्यास एवं षोढान्यास भी करने चाहिए।

मुद्रा

तन्त्रवेत्ता ऋषियों के अनुसार "मुद्रा" शब्द का निर्वचन इस प्रकार है–इस 'मुद्रा' शब्द का प्रथम अक्षर–'मु' देवताओं की प्रसन्नता का और दूसरा अक्षर 'द्रा' पापराशि के क्षय का सूचक है।[49] इस प्रकार मुद्रा के प्रभाव से देवता प्रसन्न होते हैं और साधक पापरहित हो जाता है।

49. "मोदनात्सर्व देवता द्रावणात्पापसंततेः
तस्मात्मुद्रेतिविख्याताः।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भाव की अभिव्यक्ति भाषा या शब्दों के माध्यम से अवश्य होती है। किन्तु इस विषय में सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि दो या अधिक जन के भाव की अभिव्यक्ति उसी भाषा या शब्दों के माध्यम से की जा सकती है, जिसको वे दोनों या वे सब जानते हों। हम अपना व्यवहार लौकिक भाषा से चलाते हैं। इसकी जानकारी सबको नहीं होती। किन्तु मुद्राभाव की अभिव्यक्ति का ऐसा सशक्त संकेत है, जो भाषा या शब्द का मोहताज नहीं होता। इसीलिए पूजा, हवन, अनुष्ठान एवं नृत्य में भावाभिव्यक्ति के लिए मुद्रा का सहारा लिया जाता है।

मन्त्र साधना में मुद्राओं का विस्तार से वर्णन एवं विवेचन मिलता है। लगता है कि साधक अपने हृदयस्थ भाव को अपने आराध्य देव तक पहुँचाने के लिए बार-बार विभिन्न मुद्राओं का सहारा लेता है। क्योंकि देव भाव को ही ग्रहण करते हैं।

जप में षडङ्गन्यास मुद्रा, जप से पूर्व की 24 मुद्राओं और बाद की 8 मुद्राओं का प्रयोग सभी मन्त्रों की साधना में होता है।

षडङ्गन्यास में

1	हृदय पर हथेली रखकर
2	मस्तक पर चारों अंगुलियों का अगला पर्व रखकर
3	शिखा पर अँगूठा टिकाकर
4	हाथों को कुछ ऊँचा उठाकर दाहिनी कनिष्ठा के मूल से बायीं भुजा और बायीं कनिष्ठा के मूल से दाहिनी भुजा का स्पर्शकर
5	मध्यमा एवं तर्जनी से नेत्रों का स्पर्शकर और
6	बाएं हाथ की हथेली पर मध्यमा और तर्जनी से ताली बजाकर–इन छः मुद्राओं से षडङ्गन्यास किया जाता है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

षडङ्गन्यास की मुद्राओं के चित्र

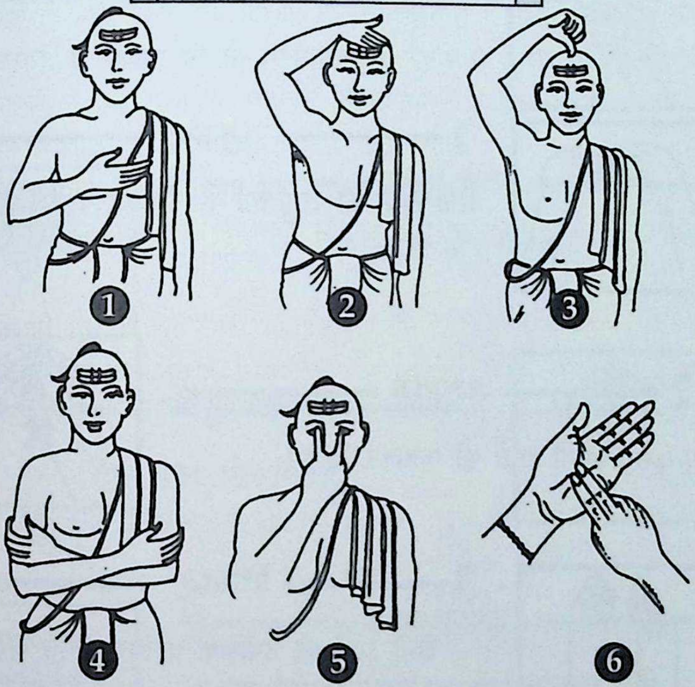

जप के पहले की चौबीस मुद्राओं के नाम इस प्रकार हैं-

1	सम्मुख मुद्रा	2	संपुटमुद्रा	3	वितत मुद्रा
4	विस्तृत मुद्रा	5	द्विमुखमुद्रा	6	त्रिमुख मुद्रा
7	चतुर्मुख मुद्रा	8	पंचमुख मुद्रा	9	षण्मुख मुद्रा
10	अधोमुख मुद्रा	11	व्यापकाञ्जलि मुद्रा	12	शकट मुद्रा
13	यमपाश मुद्रा	14	ग्रन्थित मुद्रा	15	उन्मुखोन्मुख मुद्रा
16	प्रलम्ब मुद्रा	17	मुष्टिकमुद्रा	18	मत्स्यमुद्रा
19	कूर्ममुद्रा	20	वराहक मुद्रा	21	सिंहाक्रान्त मुद्रा
22	महाक्रान्त मुद्रा	23	मुद्गर मुद्रा	24	पल्लव मुद्रा

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

चौबीस मुद्राओं के चित्र एवं परिचय

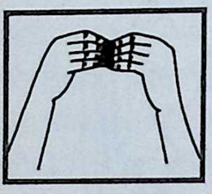

1 — सुमुखम्

दोनों हाथों की अंगुलियों को मोड़कर परस्पर मिलाएं

2 — सम्पुटम्

दोनों हाथों को फुलाकर मिलाएं

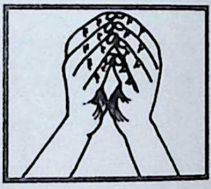

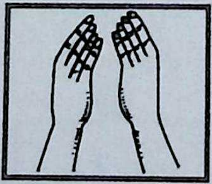

3 — विततम्

दोनों हाथों की हथेलियां परस्पर सामने करें

4 — विस्तृतम्

दोनों हाथों की अंगुलियाँ खोलकर
दोनों को कुछ अधिक अलग करें

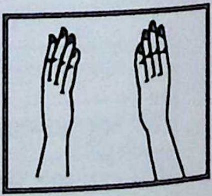

5 — द्विमुखम्

दोनों हाथों की कनिष्ठा से कनिष्ठा तथा
अनामिका से अनामिका मिलाएं

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

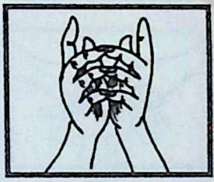

6 — त्रिमुखम् —

दोनों मध्यमा को भी और मिलाएं

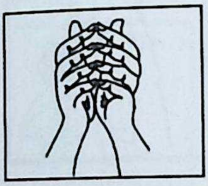

7 — चतुर्मुखम —

दोनों तर्जनी और मिलाएं

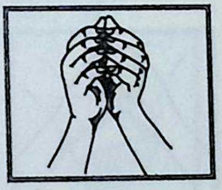

8 — पंचमुखम् —

दोनों अंगूठे और मिलाएं

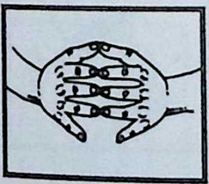

9 — षण्मुखम् —

हाथ वैसे ही रखते हुए दोनों कनिष्ठा खोलें

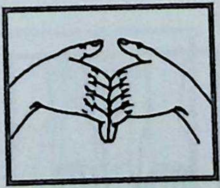

10 — अद्योमुखम् —

उल्टे हाथों की अंगुलियों को मोड़ तथा
मिलाकर नीचे की ओर करें

11 — व्यापका०जलिकम् —

वैसे ही मिले हुए हाथों को शरीर
की तरफ घुमाकर सीधा करें

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

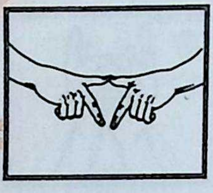

12 — शकटम्

दोनों हाथों को उल्टा कर अंगूठे से अंगूठा मिला तर्जनियों को सीधा रखते हुए मुट्ठी बाँधें मुद्राएं

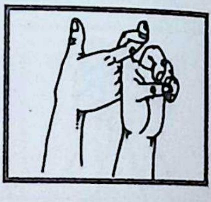

13 — यमपाशम्

तर्जनी से तर्जनी बाँधकर, दोनों मुट्ठी बाँधें

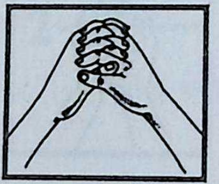

14 — ग्रन्थितम्

दोनों हाथों की अंगुलियों को परस्पर गूँथें

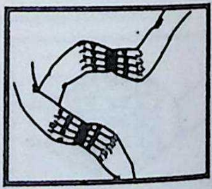

15 — उन्मुखोन्मुखम्

हाथों की पाँचों अंगुलियों को मिलाकर प्रथम बाएं पर दाहिना फिर दाहिने पर बायां हाथ रखें

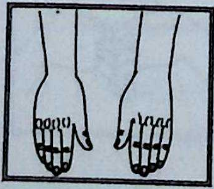

16 — प्रलम्बम्

अंगुलियों को कुछ मोड़, दोनों हाथों को उल्टाकर नीचे की ओर करें

17 — मुष्टिकम्

दोनों अंगूठे ऊपर रखते हुए दोनों मुट्ठी बाँधकर मिलाएं।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

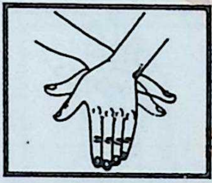

18 मत्स्यः

दाहिने हाथ की पीठ पर बायाँ हाथ
उल्टा रखकर दोनों अंगूठे हिलाएं

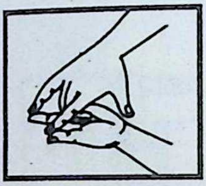

19 कूर्मः

सीधे बायें हाथ की मध्यमा, अनामिका तथा कनिष्ठा मोड़कर उल्टे दाहिने हाथ की मध्यमा, अनामिका को उन तीनों अंगुलियों के नीचे रखकर तर्जनी पर दाहिनी कनिष्ठा और बायें अँगूठे पर दाहिनी तर्जनी रखें

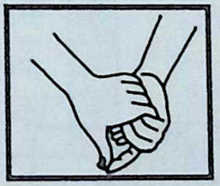

20 वराहकम्

दाहिनी तर्जनी को बायें अँगूठे से मिला, दोनों हाथों की अँगुलियों को परस्पर बाँधें

21 सिंहाक्रान्तम्

दोनों हाथों को कानों के समीप करें

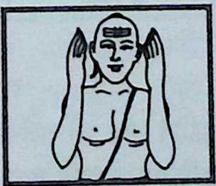

22 महाक्रान्तम्

दोनों हाथों की अंगुलियों को कानों के समीप करें

23 मुद्गरम्

मुट्ठी बाँध, दाहिनी कुहनी बायीं हथेली पर रखें

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

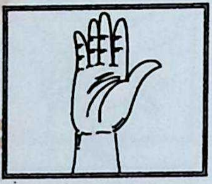

24 पल्लवम्

दाहिनी हाथ की अंगुलियों को मुख के सम्मुख हिलाएं

आठ मुद्राएं

जप के बाद की आठ मुद्राओं के नाम इस प्रकार हैं-

1	सुरभि मुद्रा	2	ज्ञानमुद्रा	
3	वैराग्यमुद्रा	4	योनिमुद्रा	
5	शंखमुद्रा	6	पंकजमुद्रा	
7	लिंगमुद्रा	8	निर्वाणमुद्रा	

— सुरभि —

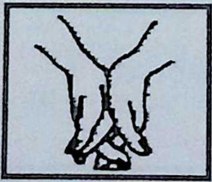

दोनों हाथों की अंगुलियाँ गूँथकर बायें हाथ की तर्जनी से दाहिने हाथ की मध्यमा, मध्यमा से तर्जनी, अनामिका से कनिष्ठा और कनिष्ठा से अनामिका अंगुली मिलाएं।

— ज्ञानम् —

दाहिने हाथ की तर्जनी से अँगूठा मिलाकर हृदय में तथा इसी प्रकार बायाँ हाथ बायें घुटने पर सीधा रखें।

— वैराग्यम् —

दोनों तर्जनियों से अँगूठा मिलाकर घुटनों पर सीधा रखें।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

— योनि —

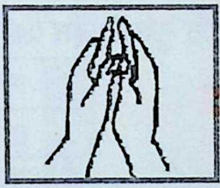

दोनों मध्यमाओं के नीचे से बायीं तर्जनी के ऊपर दाहिनी अनामिका और दाहिनी तर्जनी पर बायीं अनामिका रख दोनों तर्जनियों से बाँध, दोनों मध्यमा ऊपर रखें।

— शंख —

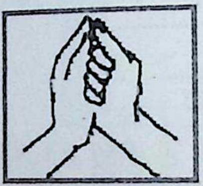

बायें अंगूठे को दाहिनी मुट्ठी में बाँध, दाहिने अंगूठे से बायीं अंगुलियों को मिलावें।

— पंकज —

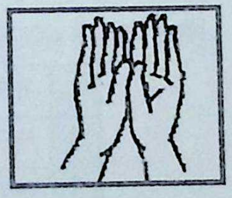

दोनों हाथों के अंगूठे तथा अंगुलियों को मिलाकर ऊपर की ओर करें।

— लिङ्गम —

दाहिने अंगूठे को सीधा रखते हुए दोनों हाथों की अंगुलियों को गूँथकर बायां अंगूठा दाहिने अंगूठे की जड़ के ऊपर रखें।

— निर्वाणम् —

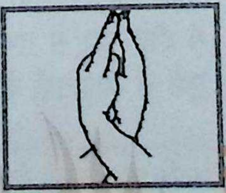

उल्टे बायें हाथ पर दाहिना हाथ सीधा रख, अंगुलियों को परस्पर गूँथ, दोनों हाथ अपनी तरफ से घुमा दोनों तर्जनियों को सीधा कान के समीप करें।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

देव-पूजन में आवाहन आदि की 9 मुद्राओं तथा गन्ध आदि की 5 मुद्राओं–इस प्रकार कुल 14 मुद्राओं को उपयोग होता है। इनके नाम हैं–

1	आवाहनी मुद्रा	2	स्थापनी मुद्रा	
3	सन्निधान मुद्रा	4	सन्निरोध मुद्रा	
5	सम्मुखीकरण मुद्रा	6	प्रार्थिनी मुद्रा	
7	अवगुण्ठनी मुद्रा	8	धेनु मुद्रा	
9	महामुद्रा	10	गन्धमुद्रा	
11	पुष्प मुद्रा	12	धूपमुद्रा	
13	दीप मुद्रा	14	ग्रास मुद्रा	

मन्त्र शास्त्र के अन्य आचार्यों ने नैवेद्य समर्पण के समय इन पाँच मुद्राओं-प्राणमुद्रा, अपानमुद्रा, व्यानमुद्रा, उदानमुद्रा एवं समानमुद्रा दिखाने का निर्देश दिया है तथा विशेषार्घ्य स्थापना में निम्नलिखित 13 मुद्राओं का उपयोग किया जाता है। इनके नाम है–

1	शंखमुद्रा	2	अंकुशमुद्रा	
3	मत्स्यमुद्रा	4	छोटिका मुद्रा	
5	अवगुष्ठान मुद्रा	6	धेनु मुद्रा	
7	सन्निरोध मुद्रा	8	मुसल मुद्रा	
9	चक्र मुद्रा	10	महा मुद्रा	
11	योनि मुद्रा	12	गालिनी मुद्रा	
		13	गरुड़ मुद्रा।[50]	

इन सभी मुद्राओं की जानकारी सद्गुरू से प्राप्त की जाती है।

हवन में मृगी मुद्रा, हंसी मुद्रा एवं सूकरी मुद्रा का उपयोग किया जाता है, यथा–शान्तिक एवं पौष्ठिक अनुष्ठान में मृगी मुद्रा से, आकर्षण एवं वशीकरण में हंसी मुद्रा से तथा स्तम्भन, विद्वेषण, उच्चाटन एवं मारण के हवन में सूकरी मुद्रा से आहुतियाँ दी जाती हैं।

50.विस्तृत जानकारी के लिए देखिए- मन्त्रमहोदधितएंग-22

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

देवताओं को कुछ मुद्राएं विशेष प्रिय हैं, जिनको जप एवं पूजन के समय दिखाने से देवता प्रसन्न होते हैं–

विष्णु की प्रिय मुद्राएं

शंख, चक्र, गदा, पद्‌म, वेणु, श्रीवत्स, कौस्तुभ, वनमाला, ज्ञान, विल्व, गरुड़, नारसिंही, वाराही, हयग्रीवी, धनुष, बाण, परशु, जगन्मोहिनी एवं काम–ये 19 मुद्राएं विष्णु को प्रिय हैं।

शिव की प्रिय मुद्राएं

लिंग, योनि, त्रिशूल, माला, वर, मृग, अभय, खट्‌वाङ्ग, कपाल एवं डमरू–ये 10 मुद्राएं शिव को प्रिय हैं।

गणेश की प्रिय मुद्राएं

दन्त, पाश, अंकुश, विघ्न, परशु, लड्‌डूक एवं बीजापूर–ये 7 मुद्राएं गणेश को प्रिय हैं।

दुर्गा की प्रिय मुद्राएं

पाश, अंकुश, वर, अभय, खड्‌ग, चर्म, धनुष, बाण एवं मौशली–ये 9 मुद्राएं दुर्गा को प्रिय हैं।

श्यामा एवं शक्ति की प्रिय मुद्राएं

मत्स्य, कूर्म एवं लेलिहा–ये तीन मुद्राएं श्यामा एवं शक्ति को समान रूप से प्रिय हैं। श्यामा को मुण्डमाला एवं शक्ति को महायोनि मुद्रा प्रिय हैं।

तारा की प्रिय मुद्राएं

योनि, भूतिनी, बीज, दैत्यधूमिनी एवं लेलिहाना–ये 5 मुद्राएं तारा को प्रिय हैं।

त्रिपुरा की प्रिय मुद्राएं

संक्षोभ, द्रावणी, आकर्षण, वश्य, उन्माद, महांकुशा, खेचरी, बीज, योनि एवं त्रिखण्डा–ये 10 मुद्राएं त्रिपुर सुन्दरी को प्रिय हैं।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अन्य देवताओं की प्रिय मुद्राएं

लक्ष्मी को लक्ष्मीमुद्रा, सरस्वती को अक्षमाला, वीणा, व्याख्या एवं पुस्तकमुद्रा, गोपाल को वेणुमुद्रा, नृसिंह को नारसिंही मुद्रा, वराह को वाराहीमुद्रा, हयग्रीव को हयग्रीवीमुद्रा, राम को धनुष एवं बाणमुद्रा, कृष्ण को जगन्मोहिनी मुद्रा, परशुराम को परशुमुद्रा और अग्नि को सप्तजिह्वा मुद्राएं प्रिय हैं।

अन्य उपयोगी मुद्राएं

मन्त्र-साधना में कुम्भ मुद्रा से अभिषेक, पद्म मुद्रा से आसन शुद्धि कालकर्णी मुद्रा से विघ्न शान्ति, नाराच मुद्रा से वस्तुओं का पवित्रीकरण, गालिनी मुद्रा से जलशोधन एवं अंकुश मुद्रा से तीर्थों का आवाहन किया जाता है।

वस्तुतः मन्त्र साधना एक भावना व्यापार है। इसमें अपने लौकिक भाव को दिव्य भाव में मिलाकर आराध्य देव का सामीप्य प्राप्त किया जाता है। इस प्रक्रिया में भाव संप्रेषण एवं भावाभिव्यक्ति का प्रमुख साधन होने के कारण मुद्रा की बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका है। यही कारण है कि तन्त्र साधना में पंचमकार की उपासना में मुद्रा को प्रमुख मकार माना गया है, अस्तु।

तर्पण

तर्पण करने से देवता शीघ्र सन्तुष्ट एवं प्रसन्न होते हैं। अतः मन्त्रसाधना में देवता की प्राप्ति एवं संतुष्टि के लिए तर्पण किया जाता है।

यह तर्पण दो प्रकार का होता है-

1. सकाम तर्पण
2. निष्काम तर्पण

सकाम तर्पण में विधि के अनुसार बताए गए द्रव्यों से और निष्काम तर्पण में जल से तर्पण किया जाता है। देवता को प्रसन्न करने का प्रमुख साधन होने के कारण तर्पण मन्त्र साधना का प्रमुख अंग माना जाता है।

नित्य एवं नैमित्तिक भेद से यह पुनः दो प्रकार का होता है। साधक को स्नान एवं सन्ध्या के बाद प्रतिदिन देवता, ऋषि एवं पितरों का तर्पण करना चाहिए–यह नित्य तर्पण कहलाता है। पूजन के समय एवं हवन के बाद का

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तर्पण नैमित्तिक तर्पण कहा जाता है। पूजन के बाद इष्टदेव एवं आवरण देवताओं का कल्पोक्त विधि से तर्पण करना चाहिए। किसी भी अनुष्ठान में हवन की आहुतियों की संख्या के दशांश से, मूलमन्त्र से तर्पण करना उस अनुष्ठान का अंग है।

मन्त्र ग्रन्थों में विविध वस्तुओं से तर्पण करने का फल इस प्रकार बतलाया गया है–मधु से तर्पण करने से सब कामनाएँ पूरी होती है और महापातक नष्ट हो जाते हैं। कपूर मिश्रित जल के तर्पण से राजा और हल्दी मिश्रित जल के तर्पण से सामान्य जन वश में हो जाते हैं। घी के तर्पण से दीर्घायु, दूध के तर्पण से आरोग्य, अगर मिश्रित जल के तर्पण से सुख, नारियल के जल के तर्पण से सर्वार्थसिद्धि, लाल मिर्च मिले जल के तर्पण से शत्रुओं का नाश, एवं कवोष्ण (गुनगुने) जल के तर्पण से शत्रुओं का उच्चाटन होता है।

हवन

जप के बिना मन्त्र सिद्ध नहीं होता और हवन के बिना वह फल नहीं देता।[51] अतः अभीष्ट फल की प्राप्ति के लिए साधक को हवन करना चाहिए।

यह हवन भी दो प्रकार का होता है-

1. काम्य हवन
2. निष्काम हवन

काम्य हवन में विधि के अनुसार निर्धारित द्रव्यों से और निष्काम हवन में यथा उपलब्ध द्रव्यों से आहुतियाँ दी जाती हैं। प्रत्येक अनुष्ठान एवं पुरश्चरण में जपसंख्या के दशांश से निर्दिष्ट द्रव्यों से हवन करना आवश्यक है। यदि इतना हवन करना साधक के लिए संभव न हो, तो जप के दशांश की संख्या का चार गुना जपकर जप संख्या के शतांश का हवन करना चाहिए। मन्त्र-साधना में हवन करना अनिवार्य ही नहीं अपरिहार्य है, क्योंकि इसके बिना साधक को फल नहीं मिलता।

51. "नो सिद्ध्यत्यजपान्मत्रो नाहुतश्च फलप्रदः।"

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

काम्य प्रयोगों में अग्नि, समिधा, कुण्ड, दिशा एवं हवन द्रव्यों का यथावत् होना आवश्यक है, अन्यथा अनिष्टफल मिलता है।

अग्नि

शान्ति एवं वशीकरण में लौकिक अग्नि में, स्तम्भन में वट वृक्ष के मन्थन से उत्पन्न अग्नि में, विद्वेषण में बहेड़े की लकड़ी से उत्पन्न अग्नि में, उच्चाटन एवं मारण में श्मशान (चिता) की अग्नि में और पौष्टिक कर्म में अग्निहोत्र या ब्राह्मण के घर से लायी अग्नि में हवन किया जाता है।

समिधा

हवन में अग्नि को प्रज्वलित करने की लकड़ी समिधा कहलाती है। शुभ कार्यों के हवन में ढाक, आक, बेल, आम एवं दूध वाले वृक्षों की समिधा से तथा क्रूर कर्मों में कुचला, बहेड़ा, नीबू, नीम, धतूरा एवं काँटेवाले तथा कड़वे वृक्षों की समिधा से अग्नि प्रज्वलित की जाती है।

दिशा एवं कुण्ड

शान्ति में पश्चिम दिशा में वृत्ताकार कुण्ड में, वशीकरण में उत्तर दिशा में पद्माकार कुण्ड में, स्तम्भन में पूर्व दिशा में चतुर्भुजाकार कुण्ड में, विद्वेषण में नैर्ऋत्यकोण में त्रिभुजाकार कुण्ड में, उच्चाटन में वायव्य कोण में षड्कोणाकार कुण्ड में, मारण में दक्षिण में अर्धचन्द्राकार कुण्ड में और शुभ कार्यों में पूर्व या मध्य में वर्गाकार कुण्ड या स्थण्डिल में हवन किया जाता है।

हवन विधि

पूजन एवं बलि देने के बाद साधक को हवन करना चाहिए। अर्घ्योदक से कुण्ड या स्थण्डिल का प्रोक्षण कर उसमें तीन रेखाएँ खींचकर विधिवत् अग्नि लाकर क्रव्यादिभ्यो नमः और मूलमन्त्र बोलकर अग्नि को प्रज्वलित कर अग्नि की जिह्वाओं का पूजन कर स्वाहान्त व्याहृतियों से तीन आहुतियाँ देकर षडङ्ग होम करना चाहिए और इसके बाद अग्नि में इष्टदेवता का आवाहन एवं पूजन कर मूलमन्त्र से विधिवत् हवन करना चाहिए।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

बलि

देवता के लिए द्रव्य का समर्पण बलि या बलिदान कहलाता है। बलिदान करने से विघ्नों की शान्ति होती है और साधक निरापद होकर सिद्धि पाता है। अतः मन्त्रसाधना में बलि महत्वपूर्ण अंग माना जाता है। यह अन्तर्याग एवं बहिर्याग दोनों में ही अनिवार्य होती है।

अन्तर्याग में आत्मबलि सर्वश्रेष्ठ मानी जाती है। इससे आग्रह एवं अहंकार नष्ट हो जाते हैं और फिर इष्टकृपा सहजतापूर्वक मिल जाती है। इस क्रम में काम, क्रोध आदि की बलि दूसरे स्थान पर मानी गयी है।

बहिर्याग में इष्टदेव का पूजन करने के बाद बलिद्रव्यों से बलिदान दिया जाता है। मन्त्रशास्त्र के विभिन्न सम्प्रदायों में अन्न, फल, फूल, धूप, दीप एवं यज्ञपशु आदि की बलि देने की भिन्न-भिन्न परम्पराएँ प्रचलित हैं। बलि-द्रव्य का निर्णय देवता के स्वभाव, उसकी रुचि, कामना का भेद एवं उसके तारतम्य के अनुसार किया जाता है। दक्षिणाचार एवं दिव्याचार में हिंसा निषिद्ध होने के कारण पशुओं की बलि वर्जित है।

इष्टदेव को बलि देने के बाद अवशिष्ट द्रव्य से अन्य देवताओं को बलि दी जाती है, यथा–घर या अनुष्ठान के स्थान के भीतर बीच में ब्रह्मा और विश्वेदेवताओं को, पूर्वोत्तर में धन्वन्तरि को, पूर्व आदि दिशाओं में इन्द्र आदि लोकपालों को, यन्त्र के चारों द्वारों पर गणेश, क्षेत्रपाल, बटुक एवं योगिनियों को, पूजागृह के द्वार पर धाता एवं विधाता को, पूर्व एवं पश्चिम में ग्रहों एवं अर्यमा को, दक्षिण में पितरों को, उत्तर में कुबेर को तथा आकाश में निशाचरों को बलि दी जाती है। आवरण देवताओं को बलि प्रधान वेदी के समीप दी जाती है। इस प्रकार बलि देने से आराध्य देव और उनके परिवार/आवरण देवताओं का अनुग्रह मिलता है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

याग

"यज्" धातु[52] से बना याग शब्द देवपूजन का पर्याय है। अतः इष्टदेव के पूजन को याग कहते हैं।

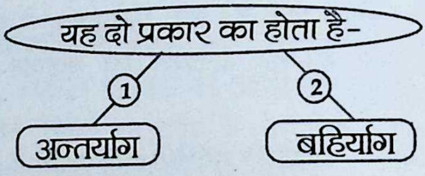

अन्तर्याग में अपनी देहमय पीठ पर, पीठ देवता, पीठ शक्तियों एवं आवरण देवताओं के साथ मानसोपचारों[53] से इष्टदेव का पूजन किया जाता है। फिर आधार चक्र से सोती हुई कुण्डलिनी को जगाकर ब्रह्मरन्ध्र में विद्यमान परमशिव के पास ले जाकर वहाँ से टपकने वाले अमृत की धाराओं से इष्टदेव को तृप्त कर मन्त्रार्थ की भावना के साथ इष्ट मन्त्र का जप किया जाता है।

सभी प्रकार की पूजाओं में अन्तर्याग की महिमा सर्वोपरि है। इसके लिए देश, काल एवं शरीर की शुद्धि आवश्यक नहीं है और यह सदैव किया जा सकता है।[54] अन्तर्याग की सिद्धि से जपसिद्धि, उससे ध्यानसिद्धि, उससे समाधिसिद्धि और उससे इष्टदेव का साक्षात्कार होता है।[55]

पीठ, विग्रह एवं यन्त्र आदि पर विधिवत् पूजन को बहिर्याग कहते हैं। इष्टदेव को प्रसन्न करने के लिए भावों के साथ विविध उपचारों का समर्पण पूजन कहलाता है।

---

52. यज् देवपूजा–संगतिकरण–दानेषु।
53. पृथ्वी तत्त्वात्मक गन्ध, आकाश तत्त्वात्मक पुष्प, वायुतत्त्वात्मक धूप, तेज तत्त्वात्मक दीप एवं रसत्त्वात्मक नैवेद्य को मानसोपचार कहते हैं।
54. "अन्तर्यागस्य महिमा सर्वश्रेष्ठः प्रकीर्तितः।
नापेक्षिता देशशुद्धिर्नापि कालशरीरयोः।।
यागे जपे मानसे वै तथा कर्मणि निश्चितम्।
सर्वदा शक्यते कर्तुं मानसी निखिलाः क्रियाः।।"
55. "याग सिद्ध्या जपः सिद्धो ध्यान सिद्धस्ततः परम्।
ततः समाधिसिद्धिः स्यादेतया देवदर्शनम्।।"

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

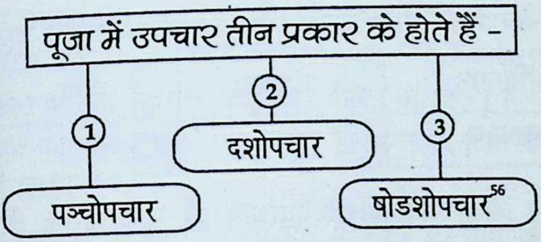

— पञ्चोपचार —

1	गन्ध	2	अक्षत	3	पुष्प	4	धूप	5	दीप को अथवा
1	गन्ध	2	पुष्प	3	धूप	4	दीप	5	नैवेद्य को पञ्चोपचार कहते हैं।

— दशोपचार —

1	पाद्य	2	अर्घ्य	3	आचमनीय	4	मधुपर्क	5	स्नानीय
6	गन्ध	7	पुष्प	8	धूप	9	दीप	10	नैवेद्य

— षोडशोपचार —

1	आसन	2	स्वागत	3	पाद्य	4	अर्घ्य	
5	आचमनीय	6	मधुपर्क	7	आचमनीय	8	स्नानीय	
9	वस्त्र	10	अलंकार	11	गन्ध	12	पुष्प	
13	धूप	14	दीप	15	नैवद्य	16	नमस्कार	
	इन सोलह उपचारों को षोडशोपचार कहते हैं।							

मन्त्रशास्त्र में कहीं-कहीं 18 उपचार, 64 उपचार एवं 100 उपचारों का भी उल्लेख मिलता है। साधक को अपनी शक्ति के अनुसार षोडशोपचार, दशोपचार या पञ्चोपचार से भक्ति-भाव सहित इष्टदेव का पीठ देवता एवं आवरण देवताओं के साथ पूजन करना चाहिए।

56. "अत्रोपचारास्त्रिविधाः दशषोडशपञ्च च।"

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मन्त्र ग्रन्थों में बहिर्याग के पाँच उपकरण बताए गए हैं-

1	अभिगमन	2	उपादान	3	इज्या
4	स्वाध्याय			5	योग

देवस्थान जाकर नहा-धोकर देवस्थान को साफ करना, लीपना, पोतना और धोना-पौंछना आदि अभिगमन कहलाता है। पूजा के लिए उपचारों का संग्रह उपादान कहा जाता है। विविध उपचारों से इष्टदेव का पूजन इज्या कहलाता है। मन्त्रजप, स्तोत्र, हृदय, पटल, कवच आदि का पाठ या नाम, गुण, लीला एवं भजन का कीर्तन स्वाध्याय कहलाता है और साधक, साधन एवं साध्य में अभेद बुद्धि रखना योग कहलाता है। इस प्रकार इन पाँचों उपकरणों के माध्यम से साधक अपने आराध्य देव की निकटता एवं कृपा प्राप्त कर लेता है।

गृहस्थ साधक अन्तर्याग एवं बहिर्याग दोनों या दोनों में से कोई एक कर सकता है। जबकि ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ, यति एवं संन्यासी को केवल अन्तर्याग ही करना चाहिए।[57]

जप

मन्त्र के अर्थ की भावना के साथ उसकी बार-बार आवृत्ति को जप कहते हैं।[58]

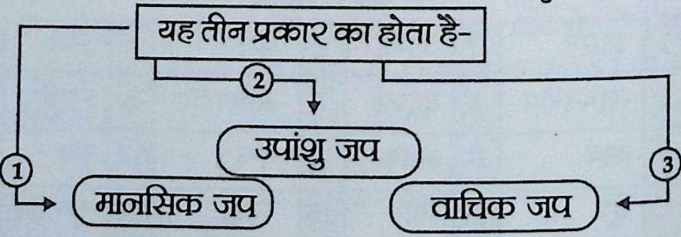

मन्त्रार्थ की भावना सहित मन-ही-मन में मन्त्र का उच्चारण मानसिक जप कहलाता है। मन्त्रार्थ एवं देवता में ध्यान लगाकर जिह्वा एवं ओष्ठ को कम्पित करते हुए केवल अपने सुनाई पड़ने योग्य मन्त्र का उच्चारण उपांशु जप कहलाता है। और मन्त्रार्थ एवं देवता में ध्यान लगाकर वाणी द्वारा मन्त्र का

57. देखिए - मन्त्र महोदधि-तरंग 25 श्लो. 25
58. "मन्त्रार्थभावनं जपः।"

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

स्पष्ट उच्चारण वाचिक जप कहा जाता है। किन्तु यह ध्यान में रखना चाहिए कि मन्त्र का उच्चारण चाहे मन में हो या गुनगुनाते हो अथवा साफ-साफ हो–यदि उस समय व्यक्ति का मन मन्त्र के अर्थ और देवता के स्वरूप में नहीं लगा हो, तो वह जप नहीं कहा जाता और ऐसा बेमन या अनमनेपन से किया गया जप फलदायक नहीं होता।

गौतमीय तन्त्र के अनुसार मन-ही-मन में स्तोत्र का पाठ और जोर-जोर से बोलकर किया गया जप निष्फल हो जाता है। काम्य प्रयोगों में भी केवल मारण में वाचिक जप का विधान है। अन्य समस्त प्रयोगों में मानसिक या उपांशु जप करना चाहिए। यद्यपि रूद्रयामल में वाचिक जप का फल यज्ञतुल्य बताया है। इसकी अपेक्षा उपांशुजप सौगुना और मानसिक जप हजार गुना अधिक फलदायी कहा गया है। किन्तु यहाँ यह भी स्पष्ट किया गया है, कि सिद्धि के लिए मानसिक जप, पुष्टि के लिए उपांशुजप एवं केवल मारण आदि क्रूर कर्मों के लिए ही वाचिक जप करना चाहिए।

स्वाभाविक रूप से जप करने की विधि यह है "कि मन को सांसारिक विषयों से हटाकर मन्त्रार्थ एवं देवता के स्वरूप में तन्मय होकर न तो बहुत जल्दी-जल्दी और न ही बहुत धीरे-धीरे, अपितु मन्त्र को मन्त्र से मिलाकर मोती की माला की तरह जप करना चाहिए।" मन्त्र का अर्थ एवं देवता का स्वरूप न जानने वाले व्यक्ति को शतकोटि (सौ करोड़) जप करने पर भी सिद्धि नहीं मिलती। जल्दी-जल्दी जप करने से व्याधि और धीरे-धीरे जप करने से सम्पति का नाश होता है। अतः अक्षर को अक्षर से, मन्त्र को मन्त्र से मोतियों के हार की तरह मिलाकर जप करना चाहिए।

मन्त्र साधना में बिना आसन, चलते-फिरते, सोते समय, भोजन के समय, चिन्तित, क्रुद्ध, भ्रान्त, भूखे–प्यासे, मलमूत्र का वेग रोककर, पैर फैलाकर, उत्कटासन पर बैठकर, पत्थर या मिट्टी पर बैठकर, शय्या या सवारी में बैठकर, अपवित्र स्थान पर बैठकर एवं हल्ला-गुल्ला, शोर–शराबे में बैठकर जप नहीं करना चाहिए। सामान्यतया जप में उन सभी बातों से बचना चाहिए, जो साधक की एकाग्रता में बाधक होती हैं।

मन्त्र शास्त्र के मर्मज्ञों का मत है, कि जप में एकाग्रता एवं निरन्तरता–ये दो प्रधान तत्व हैं। एकाग्रता साधक को मन्त्रार्थ से और देवता के स्वरूप से

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जोड़ती है, जबकि निरन्तरता जपयोग को पूर्णता पर ले जाती है। जपयोग का अर्थ है मन्त्र एवं मन्त्राधिष्ठित देवता में ऐक्य-भाव। अतः मन्त्र के अर्थ के माध्यम से देवता के स्वरूप का ध्यान करते हुए एकाग्रमन से प्रतिदिन प्रातःकाल से मध्याह्न तक समान संख्या में जप करना चाहिए। किसी दिन कम और किसी दिन अधिक जप करने से अनुष्ठान एवं पुरश्चरण की व्यवस्था भंग होती है। जब तक मन में एकाग्रता हो और जब तक चित्तवृत्तियाँ शान्त हो, तब तक जप करना चाहिए। अशान्त मन से किया गया जप निष्फल हो जाता है।

जप काल में आलस्य, निद्रा, जँभाई, भूख, थकान, चिन्ता, शोक, क्रोध, भय, घृणा और कुविचार पूर्णरूपेण वर्जित माने जाते हैं। जप के समय एक बार अन्य शब्द बोलने पर प्रणवपूर्वक, कई शब्द बोलने या निष्ठुर शब्द बोलने पर प्राणायामपूर्वक और किसी से किसी भी प्रकार की बातचीत करने पर आचमन, प्राणायाम एवं अंगन्यासपूर्वक जप करना चाहिए।

वैशम्पायन संहिता के अनुसार जप करते समय पतित व्यक्ति का दर्शन, प्रलाप सुनने, जँभाई या अपानवायु के निकलने पर आचमन, प्राणायाम एवं अंगन्यास करके पुनः जप करना चाहिए। **जप के समय शूद्र, कुत्ता, बिल्ली, मुर्गा, चील, कौआ, बगला, बन्दर या गधा दिखाई दे, तो आचमन करके और इनका स्पर्श हो जाए तो स्नान करके जप करना चाहिए।**

वरदातन्त्र में कहा गया है, कि जप एक स्थान पर, एक निर्धारित समय पर और मनोयोगपूर्वक किया जाए, तो निश्चित रूप से अभीष्ट फलदायक होता है।

ध्यान

मन्त्र द्वारा इष्टदेव के स्वरूप को जानना ध्यान कहलाता है।[59] प्रारम्भ में मन, मन्त्र एवं देवता की पृथक्-पृथक् अनुभूति होती है। ध्यान के प्रभाव से इन तीनों में एकात्मता का बोध होता है।

मन्त्र साधना में ध्यान भाव प्रधान होता है।

जिस प्रकार मन्त्र शब्द से सम्बद्ध है, उसी प्रकार शब्द अर्थ से, अर्थ भाव से और भाव रूप से सम्बद्ध है। इसीलिए मन्त्र के माध्यम से उसका अर्थ, भाव एवं रूप को जानना ध्यान कहलाता है। प्रत्येक मन्त्र का एक विशेष अर्थ, भाव

59. "ध्यानं इष्टस्वरूपस्य वेदनं मनसा खलु।"

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

एवं रूप होने के कारण उसका ध्यान भी विशेष होता है। यही कारण है मन्त्र शास्त्र में प्रत्येक मन्त्र के ध्यान का पृथक्-पृथक् वर्णन किया गया है। तात्पर्य यह है कि कार्यब्रह्म के नाम, रूप और भाव अनन्त होने के कारण मन्त्रशास्त्र में अनन्त मन्त्र और ध्यानों का वर्णन मिलता है।

भेद एवं अभेद दोनों ही निष्ठाओं में या निराकार एवं साकार दोनों ही उपासनाओं में ध्यान सबसे आवश्यक एवं महत्वपूर्ण अंग है। ध्यान के अनेक प्रकारों में से साधक को अपनी रुचि, भावना, अधिकार एवं निष्ठा के अनुसार अपने आराध्य देव का ध्यान करना चाहिए।

साधक को यह स्मरण रखना चाहिए कि एक ही परमात्मा के अनेक दिव्य एवं कल्याणकारी रूप देवताओं के रूप में प्रकट हुए हैं। उनमें से किसी एक का आश्रय लेकर उसके स्वरूप को समझकर परमात्मा को जाना जा सकता है। क्योंकि वास्तव में परमात्मा उससे अभिन्न है। परमात्मा के परमभाव को समझकर उनके किसी भी रूप का ध्यान किया जाए, तो प्राप्ति उस एक ही परमात्मा की होगी, जो सर्वथा अचिन्त्य, सर्वव्यापी, सर्वरूप, स्वप्रकाश, सर्वात्मा, सर्वद्रष्टा, सर्वोपरि, सर्वेश्वर, सर्वज्ञ, अज, अविनाशी, सर्वातीत, अचिन्त्यस्वरूप, सदसद्विलक्षण, एकमात्र चरम एवं परम सत्य है। अतएव साधक को इधर-उधर मन न भटका कर अपने आराध्य देव में समस्त श्रद्धा एवं भक्ति रखते हुए प्रारम्भ में मन्त्रार्थ भाव से और आगे चल कर परमभाव से उन्हीं का ध्यान करना चाहिए।

समाधि

मन्त्रसाधना की समाधि का नाम महाभाव है। जब तक मन, मन्त्र एवं देवता इन तीनों की पृथक्-पृथक् सत्ता प्रतिभाषित होती है, तब तक ध्यान का अधिकार है और जब इन तीनों में एकात्मता या एकरूपता की अनुभूति होने लगती है, तो समाधि प्रारम्भ हो जाती है। इस समाधि में महाभाव उदय होता है, जिससे सत्य उसी प्रकार प्रस्फुटित होता है, जैसे ज्वालामुखी से लावा। यह महाभाव मल, विक्षेप, आवरण एवं अज्ञान को नष्ट कर साधक एवं आराध्य देव में तादात्म्य का बोध कराता है, जिससे देव का साक्षात्कार होता है। इस प्रकार समाधि में अपने एवं इष्टदेव के अन्तर को नष्ट कर साधक स्वयं इष्टमय हो जाता है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

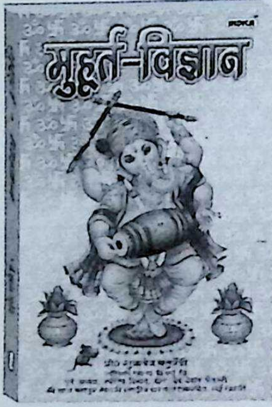

मूल्य : 135.00

प्रो. शुकदेव चतुर्वेदी

मुहूर्त–विज्ञान

काल के उस खण्ड को 'मुहूर्त' कहते हैं, जो किसी कार्य की प्रकृति एवं प्रक्रिया के लिए सर्वथा अनुकूल एवं उपयुक्त हो। इसीलिए भारतीय परम्परा में प्रत्येक पारिवारिक, सामाजिक, धार्मिक, व्यावसायिक एवं राजनैतिक कार्य का प्रारम्भ शुभ मुहूर्त में किया जाता है।

संस्कृत भाषा में लिखित इस शास्त्र के मानक एवं प्रामाणिक ग्रन्थों से सारतत्त्व लेकर हिन्दी भाषा में लिखित 'मुहूर्त विज्ञान' नामक ग्रन्थ के प्रथम एवं द्वितीय अध्याय में काल, उसका स्वरुप एवं उसके एकादश अंगों–1. वर्ष, 2. अयन, 3. ऋतु, 4. मास, 5. पक्ष, 6. वार, 7. तिथि, 8. नक्षत्र, 9. योग, 10. करण एवं 11. लग्न का परिचय और उनके शुभाशुभत्व का विवेचन किया गया है।

इस ग्रन्थ के तृतीय अध्याय में वैदिक संस्कार एवं जनजीवन में उनकी उपयोगिता के निरुपण के साथ–साथ गर्भधान, पुंसवन, सीमान्त, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, मुण्डन, कर्णवेध, विद्यारम्भ, उपनयन, केशान्त, समापवर्तन, विवाह एवं अग्न्याधान के मुहूर्तों की शास्त्रीय विवेचना की गई है।

चतुर्थ अध्याय में सर्वारम्भ, सगाई, वाग्दान, तिलक, शगन, कन्या की गोद भराई, मण्डप, तैल हरिद्रा, लेपन, वधू प्रवेश, द्विरागमन, चूल्हा छुआई, विष्णु पूजन, प्रसूतिका स्नान, चूड़ा, प्रथम स्तनपान, होला–रोहण एवं कुँआ/जल पूजन जैसे प्रकीर्ण मुहूर्तों का प्रतिपादन किया गया है।

पंचम अध्याय में भूमि पूजन, शिलान्यास, गृहप्रवेश मन्दिर प्रतिष्ठा, जलाशय निर्माण, यात्रा, ऋण लेना (फाइनेन्स कराना), नौकरी/पदग्रहण, चुनाव में नामांकरण, शपथ ग्रहण, चिकित्सा, आपरेशन, मुकदमा, गुरुदीक्षा, मंत्रदीक्षा, यज्ञ/अनुष्ठान, व्यापार, व्यवसायियों के कार्यालय, फैक्टरी/कारखाने, विदेश व्यापार, बैंकिंग, टी.वी. एवं फिल्म निर्माण के मुहूर्तों का निरुपण किया गया है।

इस प्रकार आज के सन्दर्भ में सभी जीवनोपयोगी कार्यों के मुहूर्तों का वर्णन एवं विवेचन करने वाला यह शास्त्रीय ग्रन्थ ज्योतिषी, पण्डित, पुरोहित, धर्माचार्य एवं इस विषय के जिज्ञासुओं के लिए समान रुप से पठनीय एवं संग्रहणीय है।

प्रदीप कुमार

प्रो. शुकदेव चतुर्वेदी

भारतीय वास्तु शास्त्र

वर्तमान संदर्भ में समग्र परिचलन

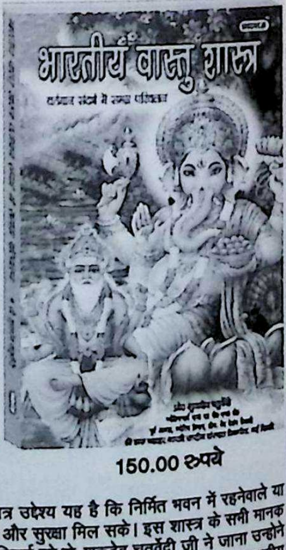

150.00 रुपये

मनुष्यों के निवास एवं कार्य करने योग्य भूमि एवं भवन को वास्तु कहते हैं और जिस शास्त्र में भूमि एवं भवन में निवास एवं कार्य करने वाले लोगों को अधिकतम सुविधा एवं सुरक्षा प्राप्ति के नियमों, सिद्धान्तों, विधियों एवं प्रविधियों का प्रतिपादन किया जाता है, उस शास्त्र को वास्तुशास्त्र कहते हैं। दर्शन एवं विज्ञान के प्रायः सभी शास्त्र यह मानते हैं, कि मानव सहित सभी प्राणी पंच महाभूतों से बने हैं।

वैदिक चिन्तनधारा में वास्तुशास्त्र ही एक ऐसी विद्या है, जिसमें मनुष्य मात्र के आवास एवं अन्य कार्यों के लिए निर्मित भवनों में पंच महाभूतों के सन्तुलन पर आधारित भवन–निर्माण के नियमों का वर्णन एवं विवेचन किया गया है। जिससे उसकी शारीरिक एवं मानसिक क्षमताओं को सक्रिय एवं उन्नत रखा जा सके। इसीलिए इस शास्त्र का मानवजीवन में महत्व एवं उपयोगिता हमेशा से रही है।

वास्तुशास्त्र का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। आवास के लिए, व्यवसाय के लिए राजकाज के लिए उद्योग–धन्धे के लिए, धार्मिक या सामाजिक कार्य के लिए किसी भी प्रकार के भवन का निर्माण हो–वह चाहे ऋषियों के आश्रम, मुनियों के स्थानक, भिक्षुओं के विहार या भक्तों के मन्दिर हों, चाहे वह राजा महाराजाओं के महल, सेठ–साहूकारों के कोठी–बंगले, आम जनता के मकान या फ्लैट हों, चाहे वह दुकान, शोरूम, व्यवसाय केन्द्र (कमर्शियल काम्पलैक्स) या मिल–कारखाने हों। चाहे वह होटल, रेस्ट्रों या रिसार्ट हों, अथवा सरकारी या गैर सरकारी दफ्तर, शिक्षा संस्थान या जनकल्याण के स्थान हों–इन सब के निर्माण में वास्तुशास्त्र का एकमात्र उद्देश्य यह है कि निर्मित भवन में रहनेवाले या उसका उपयोग करने वाले लोगों को वहां रहने और काम करने में पूरी–पूरी सुविधा और सुरक्षा मिल सके। इस शास्त्र के सभी मानक ग्रन्थ संस्कृत भाषा में लिखे होने के कारण आम लोगों की पहुंच से दूर हैं। इस कठिनाई को प्रो. शुकदेव चतुर्वेदी जी ने जाना उन्होंने और अनेक छात्रों ने लम्बे समय तक अनुभव किया और इस कमी को दूर करने के लिए इस शास्त्र के शोध में प्रवृत्त हुआ। भारतीय वास्तुशास्त्र के नाम से हिन्दी में प्रस्तुत यह ग्रन्थ इसी शोधकार्य का परिणाम है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रयोग खण्ड

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

11

पुरश्चरण

मन्त्र-पुरश्चरण

इस प्रयोग खण्ड में श्रीगणेश, विष्णु, शिव, दुर्गा एवं सूर्य आदि के मन्त्र और उनके विनियोग न्यास, ध्यान, यन्त्र एवं साधना की प्रविधि के माध्यम से मन्त्रों के पुरश्चरण का विचार किया जा रहा है।

मन्त्र-दीक्षा के बाद साधना मार्ग में निरन्तर आगे बढ़ने को पुरश्चरण कहते हैं। पुरश्चरण द्वारा ही साधक को सिद्धि मिलती है। योगिनी हृदयतन्त्र के अनुसार गुरू से मन्त्र प्राप्त होते ही उसका पुरश्चरण करना चाहिए। क्योंकि जिस प्रकार जीवहीन शरीर कोई काम नहीं करता, उसी प्रकार पुरश्चरणहीन मन्त्र किसी भी कामना की पूर्ति नहीं करता। अतः लौकिक एवं पारलौकिक कामना की पूर्ति के लिए मन्त्र का पुरश्चरण करना अनिवार्य है।

मन्त्र एक गुप्त विद्या है, जो मनन करने से साधक को दुःखों के घात-प्रतिघातों से सुरक्षित रखती है। लौकिक एवं पारलौकिक दृष्टि से पूरी-पूरी सुविधा एवं सुरक्षा देने का सशक्त साधन मन्त्र है। यह इष्ट प्राप्ति के साथ-साथ अनिष्टों का परिहार भी करता है। दर्शन शास्त्र में श्रवण, मनन एवं निदिध्यासन को तत्वज्ञान का जनक माना जाता है। मन्त्रसाधना में इनका पूरा उपयोग होता है। इस परम्परा में मन्त्रदीक्षा श्रवण है, मन्त्रार्थ भावनापूर्वक मन्त्र का जप मनन है और मन्त्र का पुरश्चरण निदिध्यासन है। इस प्रकार तत्व या देवता का साक्षात्कार करने के लिए पुरश्चरण करना आवश्यक है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पुरश्चरण का स्थान

योगिनीहृदय के अनुसार – सिद्धपीठ, नदीतट, गुफा, तीर्थ, संगम, पवित्रवन, एकान्त उद्यान, विल्ववृक्ष, पर्वत, तुलसीकानन, गोशाला, देवालय, पीपल या आँवले का वृक्ष, सरोवर या अपने घर के पवित्र एवं एकान्त कक्ष में पुरश्चरण किया जाता है। काली, तारा एवं छिन्नमस्ता आदि तामस देवताओं का पुरश्चरण एकलिंग, शिवालय, श्मशान, निर्जन गृह, आकण्ठजल, रणभूमि या विजनकानन में किया जाता है। ब्रह्मयामल के अनुसार – घर में पुरश्चरण करने की तुलना में गोष्ठ में दसगुना, जंगल में सौ गुना, सरोवर के किनारे हजार गुना, नदी तट पर लाख गुना, पर्वत पर करोड़ गुना, शिवालय में अरबों गुना और गुरू के सान्निध्य में अनन्त फल मिलता है।

इस विषय में सिद्धान्तपक्ष यह है कि– पुरश्चरण के लिए वह स्थान सर्वश्रेष्ठ होता है, जहाँ बैठकसाधना करने से चित्त की ग्लानि मिटे और मन में एकाग्रता एवं प्रसन्नता बढ़े। जिस स्थान पर लम्बे समय तक लगातार बैठने में किसी प्रकार की शंका, भय, या आतंक न हो, म्लेच्छ, दुष्ट, बाघ एवं सर्प-बिच्छु आदि बाधक न हों, जहाँ आस-पास में नास्तिक या विधर्मी न हों, जहाँ किसी प्रकार का उपद्रव, दुर्भिक्ष एवं महामारी न हो, गुरूजनों एवं सम्प्रदाय के वृद्धजनों का सहज सान्निध्य हो और चित्त में एकाग्रता एवं प्रसन्नता का सहज प्रवाह हो, वह स्थान पुरश्चरण के लिए श्रेष्ठ होता है।

दीपस्थान एवं कूर्मचक्र

गौतमीय तन्त्र में कहा गया है–कि पर्वत समुद्रतट नदी एवं तपोवन में कूर्मचक्र से दीपस्थान का निर्णय करने की आवश्यकता नहीं है। किन्तु घर, मन्दिर या धर्मस्थल में पुरश्चरण करना हो तो कूर्मचक्र के अनुसार दीपस्थान का निर्णयकर उस जगह पर पुरश्चरण या अनुष्ठान करना चाहिए, यथा–

"दीपस्थानं समाश्रित्य कृतं कर्म फलप्रदम्।"

जहाँ बैठकर, मन्त्र का जप, पुरश्चरण या अनुष्ठान करने से मन्त्र शीघ्र ही जाग्रत एवं उद्दीप्त हो जाता हो। इसका निर्णय कूर्मचक्र के अनुसार किया जाता है, यथा– जिस घर, मन्दिर, धर्मस्थान या क्षेत्र में पुरश्चरण करना हो, उसके मध्य में स्वर तथा पूर्व से उत्तर तक के सात भागों में कवर्ग आदि सात वर्ग स्थापित कर ईशान में ल एवं क्ष वर्ण लिखने चाहिए।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कूर्म चक्र

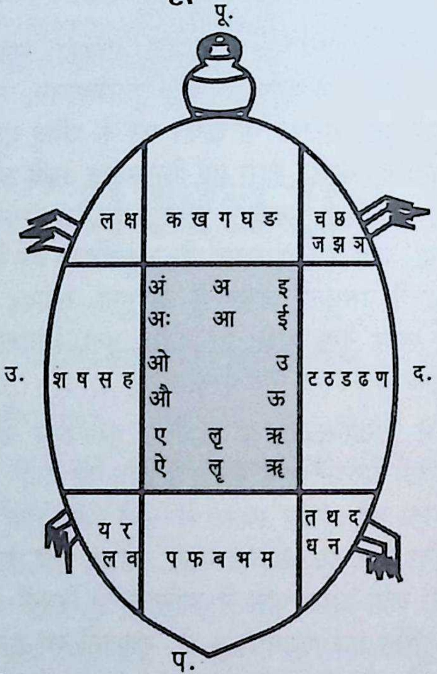

इस चक्र में मन्दिर या क्षेत्र आदि का प्रथम अक्षर जिस दिशा के जिस भाग में पड़ता हो, उस भाग को दीप स्थान कहते हैं। इस स्थान पर बैठकर पुरश्चरण करने से शीघ्र सिद्धि मिलती है।

पुरश्चरण में आहार

पुरश्चरण एवं अनुष्ठान के समय साधक को पवित्र भोजन करना चाहिए। क्योंकि भोजन के रस से शरीर, मन एवं प्राण का निर्माण होता है। अपवित्र भोजन से शरीर में रोग, प्राणों में क्षोभ एवं मन में विकार पैदा होते हैं। विकार युक्त तन एवं मन से मन्त्र एवं देवता की साधना नहीं की जा सकती। इसके विपरीत शुद्ध मन के आधार से चित्त का मल एवं मन का विक्षेप नष्ट हो जाता है। तन और मन की निर्मलता से ही मन्त्र एवं देवता के प्रसाद का उदय होता है। अतः पुरश्चरण अनुष्ठान आदि में आहार की पवित्रता पर विशेष ध्यान देना चाहिए।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आहार या भोजन में तीन दोष होते हैं-

		1	जाति दोष			
		2	आश्रय दोष			
		3	निमित्त दोष			

खाद्य पदार्थ में स्वभाव से रहने वाला दोष जाति-दोष कहलाता है, जैसे प्याज, लहसुन, मांस, मछली एवं अण्डा आदि में तामसिकता जातिदोष है। जो पवित्र वस्तुएँ निकृष्ट व्यक्ति या स्थान का आश्रय प्राप्त कर लेती हैं, तो उनमें आश्रय-दोष आ जाता है, जैसे-कसाई की दुकान या शराबखाने में रखा हुआ दूध भी अपवित्र हो जाता है तथा पवित्र स्थान पर रखी हुई पवित्र वस्तु भी कभी-कभी निमित्त दोष से अपवित्र हो जाती है, जैसे मन्दिर के प्रांगण में रखे हुए दूध को कुत्ता या बिल्ली पी जाय अथवा कौआ चोंच डाल दे, तो वह अपवित्र हो जाता है।

पुरश्चरण काल में साधक का आहार इन तीनों दोषों से मुक्त होना चाहिए। साधना के दिनों में साधक को मुख्य रूप से हविष्यान्न ग्रहण करना चाहिए। जिन वस्तुओं की पवित्रता परम्परा सम्मत हो या जिन वस्तुओं को प्रसाद के रूप में देवता को समर्पित किया जा सकता हो और जिनका स्वभाव तामसिक न हो वे सब चीजें आहार में ग्राह्य होती हैं।

अगस्त्य संहिता में दूध, दही, गोघृत, सफेद तिल, कन्द, केला, उत्तम नारियल, आँवला, चावल, मूंग, जौ, जीरा एवं फलों को हविष्यान्न कहा गया है। मतान्तर से हैमन्तिक धान्य, सैन्धव नमक, फल, मेवा, दूध एवं दूध से बने पदार्थ और वे वस्तुएँ जो तेल में न तली गयी हों—वे सब हविष्यान्न कहलाती हैं। पुरश्चरण काल में इन वस्तुओं को भोजन में लेना चाहिए।

आहार में मधु, नमक, तेल, पान, गाजर, उड़द, मसूर, कोदों, चना, बासी अन्न, रूखा अन्न, गरिष्ठ भोजन एवं सड़े-गले पदार्थ सर्वथा त्याज्य हैं। भोजन के सम्बन्ध में एक और बात ध्यान में रखने योग्य यह है, कि जितने भोजन की आवश्यकता हो, उससे कुछ कम भोजन करना चाहिए। क्योंकि पेट भर भोजन या अधिक भोजन करने से प्रमाद, आलस्य एवं निद्रा का वेग बढ़ता है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पुरश्चरण के नियम

पुरश्चरण के नियमों का व्यापक एवं विस्तृत वर्णन मन्त्रशास्त्र में मिलता है। इनमें से बारह नियम मुख्य हैं, यथा–

1	भूमिशयन	2	ब्रह्मचर्यपालन	3	देवस्तुति एवं कीर्तन
4	मौन	5	गुरूसेवा	6	त्रिकाल स्नान
7	पापकर्म परित्याग	8	नित्यपूजा	9	नैमित्तिक पूजा
10	परोपकार	11	इष्टदेव एवं गुरू में निष्ठा	12	कर्म में तत्परता
पुरश्चरण काल में इन नियमों का पालन करने से साधक को शीघ्र सिद्धि मिलती है।					

पुरश्चरण के अन्य सामान्य नियम इस प्रकार हैं–कि इस समय में कुटिलता, क्षौर, उबटन, बिना भोग लगाया भोजन एवं बिना संकल्प के कर्म नहीं करना चाहिए। स्त्री-संसर्ग, उनकी चर्चा एवं जहाँ वे रहती हों, उस स्थान पर नहीं जाना चाहिए। ऋतुकाल के अतिरिक्त अपनी पत्नी से भी संसर्ग नहीं करना चाहिए। स्त्री साधिकाओं के लिए भी यहीं नियम पालन करने चाहिए। किन्तु यदि स्त्री साधिका ने अपने पति से दीक्षा ली हो, तो उसके संसर्ग के अतिरिक्त अन्य परिवार जनों से सम्पर्क का निषेध नहीं है।

पुरश्चरण काल में आँवले, मृत्तिका, भस्म या दही से स्नान किया जा सकता है। स्नान, आचमन एवं भोजन मन्त्रोच्चारणपूर्वक करना चाहिए। प्रतिदिन संध्या, तर्पण, हवन एवं तीनों समय या दो समय अथवा एक समय आराध्य देव का विधिवत पूजन करना चाहिए। स्नान एवं तर्पण किये बिना अपवित्र हाथ से, नग्न अवस्था में, जप नहीं करना चाहिए।

जप करते समय मल-मूत्र का वेग रोकना नहीं चाहिए। जप के समय आलस्य, जँभाई, नींद, छींक, थूकना, डरना, अपवित्र अंगों का स्पर्श, क्रोध, व्याकुलता, क्षोभ, भ्रान्ति, भूख, प्यास एवं शरीर में पीड़ा–ये सब बातें निषिद्ध होती हैं। गा-गाकर, सिर हिलाकर लिखे मन्त्र को पढ़कर, बार-बार भूलकर एवं मन्त्र के अर्थ को जाने बिना जप करना सिद्धि में प्रतिबन्धक होता है। अतः

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मन्त्र, गुरू एवं देवता में एकता कर बुद्धि से मन्त्र के अर्थ को ध्यान में रखकर मन्त्र का जप करना चाहिए।

पुरश्चरण काल में जननाशौच या मृताशौच नहीं लगते। अतः पुरश्चरण शुरू हो जाने के बाद कुटुम्ब में किसी का जन्म या मृत्यु होने पर पुरश्चरण को रोकना नहीं चाहिए।

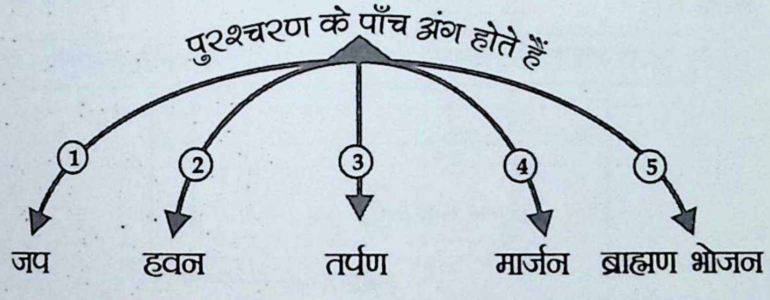

मन्त्र की निर्धारित जप संख्या पूरी हो जाने पर जप के दशांश का हवन, उसके दशांश का तर्पण, उसके दशांश का मार्जन और उसके दशांश की संख्या में ब्राह्मण भोजन कराना चाहिए।

इस प्रकार पुरश्चरण पूरा हो जाने पर गुरू, गुरूपत्नी, गुरूपुत्र एवं उनके वंशजों का पूजन कर गुरूदक्षिणा देनी चाहिए। गुरू की कृपा के बिना पुरश्चरण पूरा नहीं हो सकता। इस गुरूऋण से साधक कभी भी उऋण नहीं हो सकता। वस्तुतः गुरू अपने गुरूत्व को अपने शिष्य में स्थापित करता है, इस रहस्य को निगुरे नहीं जान सकते। पुरश्चरण की पूर्णता गुरू की प्रसन्नता के साथ जुड़ी है। अतः गुरूपूजन से प्रारम्भ होकर पुरश्चरण गुरूपूजन के साथ ही सम्पन्न एवं परिपूर्ण होता है।

ग्रहण-पुरश्चरण

सूर्य एवं चन्द्रमा का ग्रहण पुरश्चरण के लिए सर्वश्रेष्ठ समय होता है। ग्रहण वाले दिन साधक को उपवास रखना चाहिए और अपने नित्य एवं नैमित्तिक कर्म यथावत करने चाहिए। ग्रहण के समय स्पर्श से मोक्ष पर्यन्त पूरे ग्रहण काल में समुद्रगामिनी नदी में नाभिपर्यन्त गहरे जल में पूर्वाभिमुख या

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उत्तराभिमुख खड़े होकर एकाग्रतापूर्वक मूलमन्त्र का जप करना चाहिए।[1] रूद्रयामल के अनुसार महानदी में आकण्ठ या नाभिपर्यन्त जल में खड़े होकर ग्रहण का पुरश्चरण करना सर्वोत्तम है। किन्तु यदि नदी में जलचर जीवों का भय हो तो नदी के किनारे पर, शिवालय या देवमन्दिर में, तपोवन, उपवन या सरोवर के पास किसी पवित्र स्थान पर बैठकर ग्रहण का पुरश्चरण किया जा सकता है।

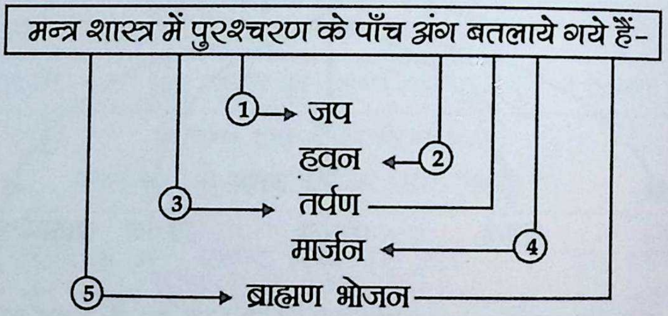

किन्तु ग्रहण काल में यह वैकल्पिक व्यवस्था है, कि इस समय स्पर्श से मोक्ष पर्यन्त के समय में केवल जप करने से पुरश्चरण पूरा हो जाता है। गौतमीय तन्त्र के अनुसार ग्रहण काल में अन्तर्याग में अपने देहमय पीठ पर आराध्य देव का मानसोपचार से पूजन किया जाता है। इस प्रकार ग्रहण का समय साधकों के लिए सबसे मूल्यवान एवं अत्यन्त उपयोगी समय है। क्योंकि इस अल्प अवधि में अत्यल्प श्रम करने से अत्यधिक फल मिलता है।

1. सूर्यग्रहे महानद्यां प्रतिमासन्निधौ वा जप्त्वा मन्त्र-सिद्धो भवति–अथर्वशीर्ष।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

12

श्री गणेश

श्री गणेश मन्त्र - ॐ गं गणपतये नमः

— विनियोग —

ॐ अस्य श्रीगणेशमन्त्रस्य गणक ऋषिः निचृद्गायत्रीछन्दः गणपतिर्देवता गं बीजं नमः शक्तिः सर्वार्थसिद्धये जपे विनियोगः।

— ऋष्यादि न्यास —

ॐ गणकऋषये नमः	– शिरसि
ॐ निचृद्गायत्री छन्दसे नमः	– मुखे
ॐ गणपतिर्देवतायै नमः	– हृदये
ॐ गं बीजाय नमः	– गुह्ये
ॐ नमः शक्तये नमः	– पादयोः

— करन्यास —

ॐ गां अंगुष्ठाभ्यां नमः।
ॐ गीं तर्जनीभ्यां नमः।
ॐ गूं मध्यमाभ्यां नमः।
ॐ गैं अनामिकाभ्यां नमः।
ॐ गौं कनिष्ठकाभ्यां नमः।
ॐ गः करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः।

— अंगन्यास —

ॐ गां हृदयाय नमः।
ॐ गीं शिरसे स्वाहा
ॐ गूं शिखायै वषट्।
ॐ गैं कवचाय हुम्।
ॐ गौं नेत्रत्रयाय वौषट्
ॐ गः अस्त्राय फट्।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"देवो भूत्त्वा देवं जपेत्" स्वयं देवमय होकर आराध्य देव का जप करना चाहिए–मन्त्र शास्त्र के इस सिद्धांत के अनुसार जप करने के पूर्व विनियोग एवं न्यास किये जाते हैं।

जिस महापुरुष ने सर्वप्रथम शिवजी के मुख से मन्त्र सुनकर विधिवत उसे सिद्ध किया था–वह उस मन्त्र का ऋषि कहलाता है। उस ऋषि को उस मन्त्र का आदि गुरू मानकर श्रद्धा सहित उसका शिर पर न्यास किया जाता है।

मन्त्र को सर्वतोभावेन उच्चारित कराने वाला तत्व छन्द कहा जाता है। छन्द अक्षरों या पदों से बनता है और इसका उच्चारण मुख से होता है। अतः छन्द का मुख में न्यास किया जाता है।

जीव मात्र के समस्त क्रियाकलापों को प्रेरित, संचालित एवं नियन्त्रित करने वाली प्राणशक्ति को देवता कहते हैं। यह शक्ति जीवमात्र के हृदय में वास करती है। अतः देवता का हृदय में न्यास किया जाता है।

मन्त्र की शक्ति को अपने अन्दर समाहित और साधना विधि से उसको प्रस्फुटित करने वाला तत्व बीज कहलाता है। अतः बीज का न्यास गुप्तांग (सृजनाङ्ग) में किया जाता है।

जिसकी सहायता से बीज मन्त्र बन जाता है और साधकों की समस्त कामनाओं को सफल करता है, वह तत्व शक्ति कहलाता है। यह बीज को फल के रूप में पल्लवित एवं विकसित करती है। उसका न्यास पाद स्थान में किया जाता है।

मन्त्र को फल की दिशा का निर्देश देना विनियोग कहलाता है। मन्त्रशास्त्र में ऋषि आदि की जानकारी के साथ-साथ उसका यथार्थ विनियोग करना आवश्यक होता है। गौतमीय तंन्त्र में कहा गया है कि ऋषि एवं छन्द आदि का ज्ञान न होने से मन्त्र का फल नहीं मिलता और उसका विनियोग न करने से मन्त्र दुर्बल रह जाता है।

विनियोग में ऋषि, छन्द, देवता, बीज, शक्ति के अलावा एक और भी तत्व होता है, जिसे कीलक कहते हैं। यह तत्व वैकल्पिक है। अतः कुछ मन्त्रों के विनियोग में मिलता है और कुछ में नहीं मिलता है। मन्त्र को धारण करने वाला

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

या मन्त्र की शक्ति को सन्तुलित करने वाला तत्व कीलक कहलाता है। इसका सर्वाङ्ग में न्यास किया जाता है।

कर/अंग

अंगूठा, तर्जनी, मध्यमा, अनामिका, कनिष्ठा एवं करतलों में न्यास करना करन्यास कहलाता है और हृदय, शिर, शिखा, कवच (भुज दण्ड) नेत्र एवं करतल इन अंगों में मन्त्र का न्यास करना अंगन्यास कहा जाता है। इस विषय में कुलार्णव में बतलाया गया है, कि जो व्यक्ति न्यास रूपी कवच धारण कर मन्त्र का जप करता है, उसकी साधना में विघ्नबाधाएँ स्वयं दूर हो जाती हैं और उसको निश्चित रूप से सिद्धि मिलती है। जो व्यक्ति अज्ञान या आलस्यवश न्यास नहीं करता, उसको पग-पग पर विघ्नों का सामना करना पड़ता है।

अंग-न्यास बहुधा षड्गन्यास के रूप में और कभी-कभी पञ्चाङ्ग न्यास के रूप में मिलता है। शारदा तिलक के अनुसार जहाँ पञ्चाङ्ग न्यास का विधान हो, वहाँ नेत्र को छोड़कर शेष पूर्वोक्त पाँच अंगों पर न्यास करना चाहिए। अन्यथा पूर्वोक्त छः अंगों पर न्यास किया जाता है।

श्रीगणेश मन्त्र का ध्यान

एकदन्तं चतुर्हस्तं पाशमुङ्कशुधारिणम्।
रदं च वरदं हस्तै र्बिभ्राणं मूषकध्वजम्।।
रक्तं लम्बोदरं शूर्पकर्णकं रक्तवाससम्।
रक्तगन्धानुलिप्ताङ्गं रक्तपुष्पैः सुपूजितम्।।

जप संख्या = 4 लाख

हवन द्रव्य

मोदकों के हवन से मनोकामना की पूर्ति।
समिद्धा एवं घी के हवन से सर्व सिद्धि।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शक्ति विनायक मन्त्र	ॐ ह्रीं ग्रीं ह्रीं

— विनियोग —

ॐ अस्य श्री शक्तिगणाधिपमन्त्रस्य भार्गव ऋषिः विराट् छन्दः शक्तिगणाधिपो देवता ग्रीं बीजं ह्रीं शक्तिः ममाभीष्टसिद्धये जपे विनियोगः।

— ऋष्यादिन्यास —

ॐ भार्गवाय ऋषये नमः शिरसि
ॐ विराट्छन्दसे नमः मुखे
ॐ शक्तिगणाद्धिपदेवतायै नमः हृदये
ॐ ग्रीं बीजाय नमः गुह्ये
ॐ ह्रीं शक्तये नमः पादयोः

— करन्यास —

ॐ ग्रां अंगुष्ठाभ्यां नमः
ॐ ग्रीं तर्जनीभ्यां नमः
ॐ ग्रूं मध्यमाभ्यां नमः
ॐ ग्रैं अनामिकाभ्यां नमः
ॐ ग्रौं कनिष्ठकाभ्यां नमः
ॐ ग्रः करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः

— षडन्यास —

ॐ ग्रां हृदयाय नमः
ॐ ग्रीं शिरसे स्वाहा
ॐ ग्रूं शिखायै वषट्
ॐ ग्रैं कवचाय हुम्
ॐ ग्रौं नेत्रत्रयाय वौषट्
ॐ ग्रः अस्त्राय फट्

— ध्यान —

विषाणांकुशावक्षसूत्रं च पांशं दधानं करैर्मोदकं पुष्करेण।
स्वपत्न्यायुतं हेमभूषाम्भराढयं गणेशं समुद्यद्दिनेशाभमीडे॥

दाहिने दोनों हाथों में अंकुश एवं अक्षसूत्र तथा बाएं हाथों में दन्त एवं पाश धारण किये हुए अपनी सूंड़ में मोदक लिए हुए अपनी पत्नी के साथ सुवर्ण के आभूषणों से अलंकृत तथा उदीयमान सूर्य जैसी आभावाले भगवान् श्रीगणेश की मैं वन्दना करता हूँ।

जपसंख्या – 4 लाख	हवन द्रव्य – मधु एवं मालपुए

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

लक्ष्मी विनायक मन्त्र

ॐ श्रीं गं सौम्याय गणपतये वरवरदसर्वजनं मे वशमानयस्वाहा

— विनियोग —

ॐ अस्य लक्ष्मीविनायकमन्त्रस्य अन्तर्यामी ऋषिः गायत्री छन्दः लक्ष्मी विनायको देवता श्रीं बीजं स्वाहा शक्तिः ममाभीष्टसिद्धये जपे विनियोगः।

— ऋष्यादिन्यास —

ॐ अन्तर्यामीऋषये नमः शिरसि
ॐ गायत्रीछन्दसे नमः मुखे
ॐ लक्ष्मीविनायकदेवतायैनमः हृदये
ॐ श्रीं बीजाय नमः गुह्ये
ॐ स्वाहा शक्तये नमः पादयोः

— करन्यास —

ॐ श्रीं गां अंगुष्ठाभ्यां नमः
ॐ श्रीं गीं तर्जनीभ्यां नमः
ॐ श्रीं गूं मध्यमाभ्यां नमः
ॐ श्रीं गैं अनामिकाभ्यां नमः
ॐ श्रीं गौं कनिष्ठकाभ्यां नमः
ॐ श्रीं गः करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः

— अंगन्यास —

ॐ श्रीं गां हृदयाय नमः
ॐ श्रीं गीं शिरसे स्वाहा
ॐ श्रीं गूं शिखायै वषट्
ॐ श्रीं गैं कवचाय हुम्
ॐ श्रीं गौं नेत्रत्रायाय वौषट्
ॐ श्रीं गः अस्त्राय फट्

— ध्यान —

दन्ताभये चक्रवरौ दधानं कराग्रगस्वर्णघटं त्रिनेत्रम्।
धृताब्जया लिङ्गितमब्धिपुत्र्या लक्ष्मीगणेशं कनकाभमीडे।।

–दाहिने हाथों में दन्त एवं शंख तथा बाएं हाथों में अभय एवं चक्र धारण किये हुए, सूंड़ के अग्रभाग में सोने का कलश लिए हुए, हाथ में कमल धारण करने वाली लक्ष्मी द्वारा आलिंगित, तीन नेत्रवाले एवं सुवर्ण जैसी क्रांति वाले श्री लक्ष्मीगणेश जी की मैं वन्दना करता हूँ।

जप संख्या – 4 लाख

हवन द्रव्य – बेलवृक्ष की समिधा

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सिद्धिविनायक मन्त्र - ॐ गं गणपतये विघ्नबाधां नाशय सिद्धिं स्वाहा

— विनियोग —

ॐ अस्य श्रीसिद्धिविनायकमन्त्रस्यभार्गवऋषिः गायत्रीछन्दः सिद्धि विनायको देवता गं बीजं स्वाहा शक्तिः ममाभीष्टसिद्धये जपे विनियोगः।

ऋष्यादिन्यास →

ॐ भार्गवाय ऋषये नमः शिरसि
ॐ गायत्रीछन्दसे नमः मुखे
ॐ सिद्धिविनायकदेवतायै नमः हृदये
ॐ श्रीं बीजाय नमः गुह्ये
ॐ स्वाहा शक्तये नमः पादयोः

— करन्यास —	— षडन्यास —
ॐ गां अंगुष्ठाभ्यां नमः	ॐ गां हृदयाय नमः
ॐ गीं तर्जनीभ्यां नमः	ॐ गीं शिरसे स्वाहा
ॐ गूं मध्यमाभ्यां नमः	ॐ गूं शिखायै वषट्
ॐ गैं अनामिकाभ्यां नमः	ॐ गैं कवचाय हुम्
ॐ गौं कनिष्ठकाभ्यां नमः	ॐ गौं नेत्रत्रयाय वौषट्
ॐ गः करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः	ॐ गः अस्त्राय फट्

— ध्यान —

उद्यद्दिनेश्वररुचिं निजहस्तपद्मैः, पाशांकुशाभयवरान् दधतं गजास्यम्।
रक्ताम्बरं सकलदुःखहरं गणेशं, ध्यायेत्सुसिद्धिसहिताभरणाभिरामम्॥

—बाएं हाथों में पाश एवं अभय मुद्रा तथा दाहिने हाथों में वरद मुद्रा एवं अंकुश धारण करने वाले, उदीयमान सूर्य जैसी आभा वाले, हाथी के समान मुख वाले, सब दुःखों को दूर करने वाले, आभूषणों से सुशोभित श्री सिद्धिविनायक का ध्यान करता हूँ।

जप संख्या – 4 लाख

हवन द्रव्य – लाजा, शाकल्य, पायस एवं घी

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सिद्धिविनायक के अन्य मन्त्र

1- ॐ गं गणपतये सिद्धिं समृद्धिं कुरु स्वाहा

2- ॐ गं गणपतये सिद्धिं समृद्धिं कुरु कुरु स्वाहा

इन मन्त्रों के विनियोग, न्यास, ध्यान जपसंख्या एवं हवनद्रव्य पूर्वोक्त सिद्धि विनायक मन्त्र के समान हैं।

सर्वसिद्धिदायक गणेश मन्त्र ॐ श्रीं गं गणपतये सर्वाभीष्टं मे साधय स्वाहा

— विनियोग —

ॐ अस्य श्री सिद्धिगणेशमन्त्रस्य नारदऋषिः अनुष्टुप्छन्दः सिद्धिदायको। गणेशदेवता गं बीजं, स्वाहा शक्तिः श्रीं कीलकं ममाभीष्टसिद्धये जपे विनियोगः।

ऋष्यादिन्यास →

ॐ नारदाय ऋषये नमः शिरसि
ॐ अनुष्टुप्छन्दसे नमः मुखे
ॐ सिद्धिदायकगणेशदेवतायै नमः हृदये
ॐ गं बीजाय नमः गुह्ये
ॐ स्वाहा शक्तये नमः पादयोः
ॐ श्रीं कीलकाय नमः सर्वाङ्गे

— करन्यास —

ॐ श्रीं अंगुष्ठाभ्यां नमः
ॐ गं तर्जनीभ्यां नमः
ॐ गणपतये मध्यमाभ्यां नमः
ॐ सर्वाभीष्टं अनामिकाभ्यां नमः
ॐ मे साधय कनिष्ठकाभ्यां नमः
ॐ स्वाहा करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः

— षडन्यास —

ॐ श्रीं हृदयाय नमः
ॐ गं शिरसे स्वाहा
ॐ गणपतये शिखायै वषट्
ॐ सर्वाभीष्टं कवचाय हुम्
ॐ मे साधय नेत्रत्रयाय वौषट्
ॐ स्वाहा अस्त्राय फट्

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

— ध्यान —

चतुर्भुजं रक्ततनुं त्रिनेत्रं पाशांकुशौ मोदकपात्रदन्तौ।
करैर्दधानं सरसीरुहस्थं स्वर्णाभयुक्तञ्च गणेशमीडे॥

–चार भुजावाले, रक्तवर्ण, तीन नेत्रवाले, कमलदल पर विराजमान दाहिने हाथों में अंकुश एवं मोदक पात्र और बाएं हाथों में पाश एवं दन्त धारण किये हुए, सुवर्ण जैसी कान्ति वाले श्री गणेश की वन्दना करता हूँ।

जप संख्या → 1,25,000 (सवा लाख)

हवन द्रव्य → तिल, घी, शहद, शक्कर एवं खील

गणेश पूजन-यन्त्र

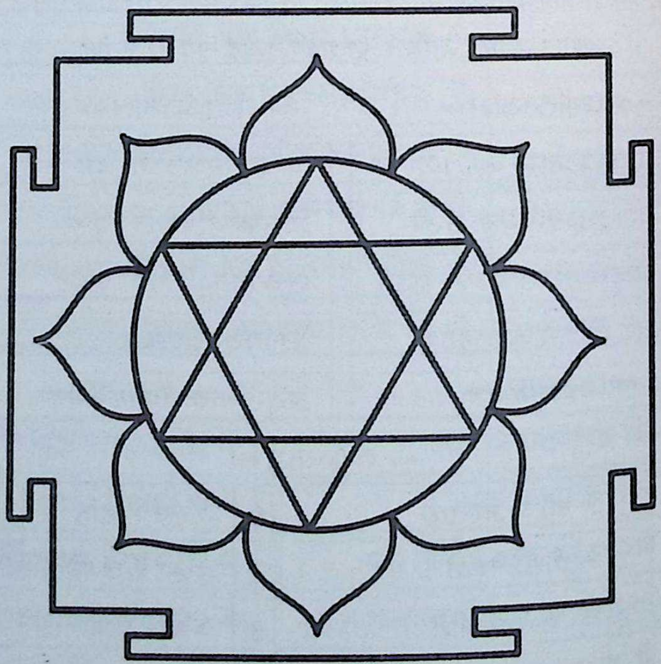

षड्कोण, अष्टदल एवं भूपुर से निर्मित यन्त्र पर श्रीगणेश जी का पूजन किया जाता है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

13

श्री कृष्ण

गोपाल मन्त्र क्लीं गोपीजनवल्लभाय स्वाहा

— विनियोग —

अस्य श्रीगोपालमन्त्रस्य नारदऋषिः, विराटछन्दः श्रीकृष्णो देवता, क्लीं बीजं स्वाहा शक्तिः सवार्थसिद्धये जपे विनियोगः।

— ऋष्यादिन्यास —

ॐ नारदाय ऋषये नमः शिरसि
ॐ विराट्छन्दसे नमः मुखे
ॐ श्रीकृष्णदेवतायै नमः हृदये
ॐ क्लीं बीजाय नमः गुह्ये
ॐ स्वाहा शक्तये नमः पादयोः

— पञ्चांगन्यास —

आचक्राय हृदयाय नमः
विचक्राय शिरसे स्वाहा
सुचक्राय शिखायै वषट्
त्रैलोक्यरक्षणचक्राय कवचाय हुम्
असुरान्तकचक्राय अस्त्राय फट्

— वर्णन्यास —

1	ॐ गों ॐ मस्तके	6	ॐ ल्लं ॐ हृदि	
2	ॐ पीं ॐ नेत्रयोः	7	ॐ भां ॐ जठरे	
3	ॐ जं ॐ कर्णयोः	8	ॐ यं ॐ लिङ्गे	
4	ॐ नं ॐ नसोः	9	ॐ स्वां ॐ जान्वोः	
5	ॐ वं ॐ मुखे	10	ॐ हां ॐ पादयोः	

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

— ध्यान —

वृन्दारण्यगकल्पपादपतले सद्रत्नपीठेऽम्बुजे,
शोणाभे वसुपत्रके स्थितमजं पीताम्बरालंकृतम्।
जीमूताभमनेकभूषणयुतं गोगोपगोपीवृत्तं,
गोविन्दं स्मर सुन्दरं मुनियुतं वेणुं रमन्तं भजे॥

–वृन्दावन में कल्पवृक्ष के नीचे, मणिपीठ पर लाल अष्टदल कमल पर विराजमान, पीताम्बर से अलंकृत, मेघ जैसी आभा वाले, आभूषणों से सुशोभित, गो, गोप एवं गोपीजन से घिरे हुए, कामदेव से भी सुन्दर वंशी बजाते भगवान् गोविन्द की वन्दना करता हूँ।

जप संख्या – एक लाख | हवन द्रव्य – तिल, जौ, घी, मक्खन

गोपाल पूजन-यन्त्र

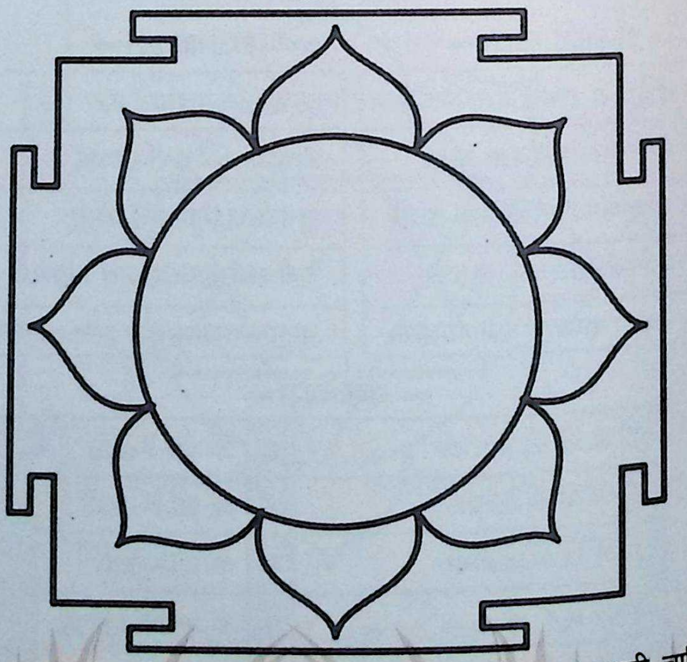

अष्टदल एवं भूपुर से बने यन्त्र पर श्री गोपाल जी की पूजा करनी चाहिए।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अन्य गोपाल मन्त्र
श्रीं ह्रीं क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय स्वाहा

— विनियोग —

अस्य द्वादशाक्षरगोपालमन्त्रस्य ब्रह्माऋषिः गायत्रीछन्दः कृष्णो देवता क्लीं बीजं स्वाहा शक्तिः ममाभीष्ट-सिद्धये जपे विनियोगः।

— ऋष्यादिन्यास —

ॐ ब्रह्मणे ऋषये नमः शिरसे
ॐ गायत्रीछन्दसे नमः मुखे
ॐ श्रीकृष्णदेवतायै नमः हृदये
ॐ क्लीं बीजाय नमः गुह्ये
ॐ स्वाहा शक्तये नमः पादयोः

— करन्यास —

श्रीं अंगुष्ठाभ्यां नमः
ह्रीं तर्जनीभ्यां नमः
क्लीं मध्यमाभ्यां नमः
कृष्णाय अनामिकाभ्यां नमः
गोविन्दाय कनिष्ठकाभ्यां नमः
स्वाहा करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः

— षडन्यास —

श्रीं हृदयाय नमः
ह्रीं शिरसे स्वाहा
क्लीं शिखायै वषट्
कृष्णाय कवचाय हुम्
गोविन्दाय नेत्रत्रयाय वौषट्
स्वाहा अस्त्राय फट्

ध्यान – पूर्ववत्

हवन द्रव्य – पूर्ववत्

जप संख्या – 1,25,000

यन्त्र – पूर्ववत्

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

द्वादशाक्षर मन्त्र - ऊँ नमो भगवते वासुदेवाय

विनियोग

अस्य श्री द्वादशाक्षरश्रीकृष्णमन्त्रस्य नारद-ऋषि गायत्रीछन्द श्रीकृष्णदेवता ॐ बीजं नमः शक्तिः सर्वार्थसिद्धये जपे विनियोगः।

ऋष्यादिन्यास	पञ्चांगन्यास
ऊँ नारदाय ऋषये नमः शिरसि	ऊँ हृदयाय नमः
ऊँ गायत्रीछन्दसे नमः मुखे	नमो शिरसे स्वाहा
ऊँ श्रीकृष्णदेवतायै नमः हृदये	भगवते शिखायै वषट्
ऊँ बीजाय नमः गुह्ये	वासुदेवाय कवचाय हुम्
ऊँ नमः शक्तये नमः पादयोः	ऊँ नमो भगवते वासुदेवाय अस्त्राय फट्

ध्यान

चिन्ताश्मयुक्तनिजदोः परिरब्धकान्त-
मालिङ्गितं सजलजेन करेण पत्न्या।
सौवर्णवेत्रहस्तमनेकभूषं,
पीताम्बरं भजत कृष्णमभीष्टसिद्धयै।।

–चिन्तामणि धारण करने वाले, हाथ में कमल-धारण करने वाली अपनी पत्नी से आलिङ्गित, दूसरे हाथ में सोने की छड़ी लिए हुए, अनेक आभूषण एवं पीताम्बर धारी भगवान् श्री कृष्ण का अभीष्ट सिद्धि के लिए ध्यान करता हूँ।

जप संख्या - एक लाख

हवन द्रव्य - शाकल्य कमल एवं आज्य

यन्त्र - पूर्ववत्

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सन्तान गोपाल मन्त्र →

क्लीं देवकीसुत गोविन्द वासुदेव जगत्पते।
देहि में तनयं कृष्ण त्वामहं शरणं गतः॥

— विनियोग —

अस्य श्री सन्तानगोपालमन्त्रस्य नारद ऋषिः अनुष्टुप् छन्दः सुतप्रदः कृष्णो देवता समाभीष्टसिद्धये जपे विनियोगः।

— ऋत्यादिन्यास —	— पञ्चांगन्यास —
ॐ नारदाय ऋषये नमः शिरसि	देवकीसुत गोविन्द हृदयाय नमः
ॐ अनुष्टुप्छन्द से नमः मुखे	वासुदेव जगत्पते शिरसे स्वाहा
ॐ श्री कृष्णदेवतायै नमः हृदये	देहि मे तनयं कृष्ण शिखायै वषद्
ॐ क्लीं नीजायनमः गुहये	त्वाामहं शरणंगतः, कवचाय हुम्
ॐ शरणंगतः शक्तये नमः वादयोः	देवकीसुत.....शरणं गतः अस्त्राफद्

ध्यान →

विजयेनयुतो रर्थास्थितः प्रसमानीय समुद्रमध्यतः।
प्रददत्तनयान्द्विजन्मने स्मरणीयो वसुदेवनन्दनः॥

- समुद्र में से लाकर ब्राह्मण को पुत्र देते हुए तथा अर्जुन के साथ रथ पर बैठे हुए भगवान् वासुदेव का स्मरण करना चाहिए।

जप संख्या - एक लाख

हवन द्रव्य - मधु, घी एवं शक्कर सहित तिल

सन्तान गोपाल यंत्र →

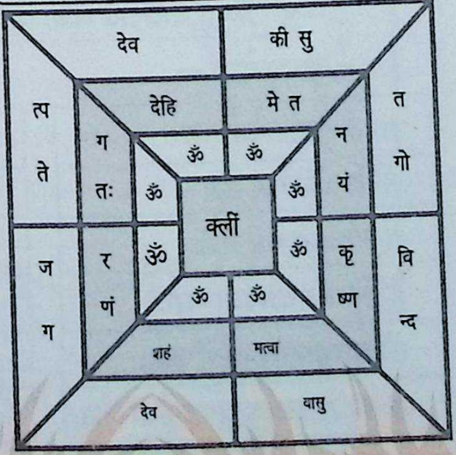

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

14

नृसिंह

उपसर्गनाशक नृसिंह मन्त्र - जय जय श्रीनृसिंह

— विनियोग —

अस्य जयनृसिंहमन्त्रस्य ब्रह्माऋषि गायत्रीछन्दः नृसिंहो देवता हं बीजं इं शक्तिः ममाभीष्टसिद्धये जपे विनियोगः।

— ऋष्यादिन्यास —

ॐ ब्रह्मणे ऋषये नमः शिरसि
ॐ गायत्रीछन्दसे नमः मुखे
ॐ नृसिंहदेवतायैनमः हृदये
ॐ हं बीजाय नमः गुह्ये
ॐ इं शक्तये नमः पादयोः

— करन्यास —

हां अंगुष्ठाभ्यां नमः
हीं तर्जनीभ्यां नमः
हूं मध्यमाभ्यां नमः
हैं अनामिकाभ्यां नमः
हौं कनिष्ठकाभ्यां नमः
हः करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः

— षडङ्गन्यास —

हां हृदयाय नमः
हीं शिरसे स्वाहा
हूं शिखायै वषट्
हैं कवचाय हुम्
हौं नेत्रत्रयाय वौषट्
हः अस्त्राय फट्

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

— ध्यान —

श्रीमन्नृकेसरितनो जगदैकबन्धो,
श्रीनीलकण्ठकरुणार्णव सामराज।
वह्नीन्दुतीव्रकरनेत्रपिनाकपाणे,
शीतांशुशेखर रमेश्वर पाहि विष्णो।

–मनुष्य एवं सिंह जैसे शरीर वाले जगत के बन्धु, नीलकण्ठवाले, करुणा सागर, सामगान से प्रसन्न होने वाले, अग्नि, चन्द्र एवं सूर्य रूपी तीन नेत्रवाले, धनुर्धारी चन्द्रकला धारण करने वाले, रमा के स्वामी, हे विष्णु ,मेरी रक्षा कीजिए।

जप संख्या – आठ लाख, एक चरण-दो लाख

हवन द्रव्य – पायस, मधु एवं घी

नृसिंह पूजन-यन्त्र

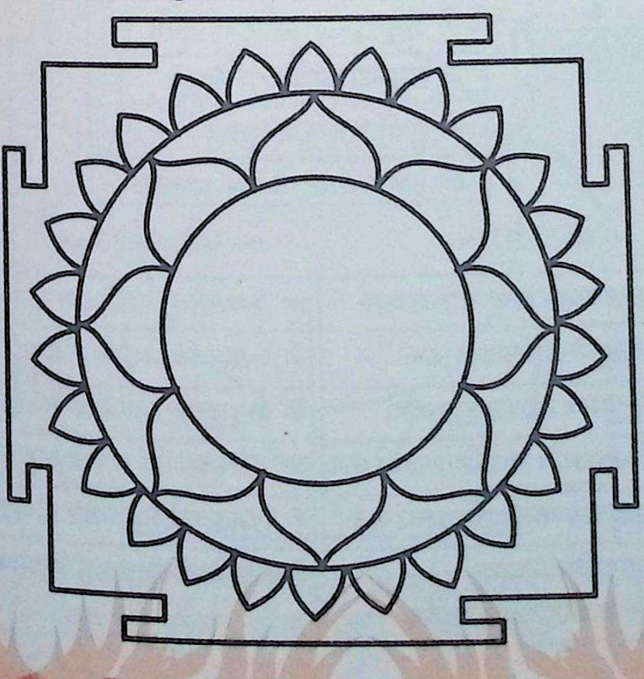

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

15

उपसर्ग एवं भयनाशक हनुमद्

उपसर्ग एवं भयनाशक हनुमद् मन्त्र
ॐ नमो भगवते आञ्जनेयाय महाबलाय स्वाहा

— विनियोग —

अस्य श्री हनुमन्मन्त्रस्य ईश्वरऋषिः अनुष्टुप्छन्दः हनुमान्देवता हुं बीजं स्वाहा शक्तिः ममाभीष्ट-सिद्धये जपे विनियोगः।

ऋष्यादिन्यास	
	ॐ ईश्वराय ऋषये नमः शिरसि
	ॐ अनुष्टुप्छन्दसे नमः मुखे
	ॐ हनुमद्देवतायै नमः हृदये
	ॐ हुं बीजाय नमः गुह्ये
	ॐ स्वाहा शक्तये नमः पादयोः

— करन्यास —	— षडङ्गन्यास —
ॐ आञ्जनेयाय अंगुष्ठाभ्यां नमः	ॐ आञ्जनेयाय हृदयाय नमः
ॐ रुद्रमूर्तये तर्जनीभ्यां नमः	ॐ रुद्रमूर्तये शिरसे स्वाहा
ॐ वायुपुत्राय मध्यमाभ्यां नमः	ॐ वायुपुत्राय शिखायै वषट्
ॐ अग्निगर्भाय अनामिकाभ्यां नमः	ॐ अग्निगर्भाय कवचाय हुम्
ॐ रामदूताय कनिष्ठकाभ्यां नमः	ॐ रामदूताय नेत्रत्रयाय वौषट्
ॐ ब्रह्मास्त्रनिवारणय करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः	ॐ ब्रह्मास्त्रनिवारणय अस्त्राय फट्

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

— ध्यान —

दहनतप्तसुवर्णसमप्रभं भयहरं हृदये विहिताञ्जलिम्।
श्रवणकुण्डशोभिमुखाम्बुजं नमत वानरराजमिहाद्भुतम्।।

–तप्त सोने के समान आभा वाले, भय को दूर करने वाले, हृदय पर अञ्जलि बाँधे हुए, कानों में लटकते कुण्डलों से शोभायमान, मुखपंकजवाले, अद्भुत वानरराज को प्रमाण करता हूँ।

जप संख्या –	10 हजार
हवन द्रव्य –	तिल एवं घी

श्री हनुमत्पूजन-यन्त्र

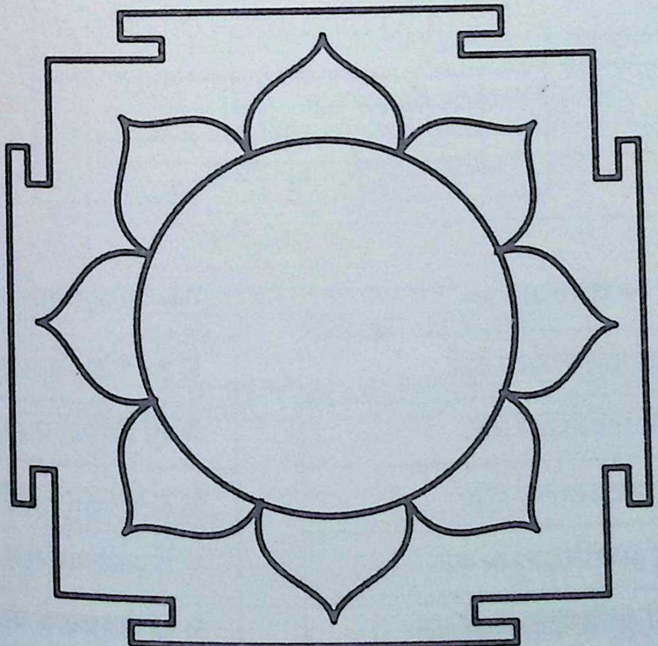

वृत्ताकार कर्णिका अष्टदल एवं भूपुर से बने
यन्त्र पर हनुमान जी का पूजन करना चाहिए–

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

रोग, रिपु एवं संकटनाशक हनुमन्मन्त्र

ॐ हं हुं हनुमते नमः

— विनियोग —

अस्य श्रीहनुमन्मन्त्रस्य श्रीरामचन्द्र ऋषि, जगतीछन्दः हनुमान् देवता हं बीजं हुं शक्तिः सर्वार्थसिद्धये जपे विनियोगः।

— ऋष्यादिन्यास —

ॐ रामचन्द्राय ऋषये नमः शिरसि
ॐ जगतीछन्दसे नमः मुखे
ॐ हनुमद्देवतायैनमः हृदये
ॐ हं बीजाय नमः गुह्ये
ॐ हुं शक्तये नमः पादयोः

— करन्यास —

ॐ हां अंगुष्ठाभ्यां नमः
ॐ हीं तर्जनीभ्यां नमः
ॐ हूं मध्यमाभ्यां नमः
ॐ हैं अनामिकाभ्यां नमः
ॐ हौं कनिष्ठकाभ्यां नमः
ॐ हः करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः

— षडङ्गन्यास —

ॐ हां हृदयाय नमः
ॐ हीं शिरसे स्वाहा
ॐ हूं शिखायै वषट्
ॐ हैं कवचाय हुम्
ॐ हौं नेत्रत्रयाय वौषट्
ॐ हः अस्त्राय फट्

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

— ध्यान —

बालार्कायुततेजसं त्रिभुवनप्रक्षोभकं सुन्दरं,
सुग्रीवादिसमस्तवानरगणैः संसेव्यपादाम्बुजम्।
नादेनैवसमस्तराक्षसगणान्संत्रासयन्तं प्रभुं,
श्रीमद्रामपदाम्बुजस्मृतिरतं ध्यायामि वातात्मजम्॥

– उदीयमान सूर्य जैसी आभावाले, तीनों लोकों को क्षोभित करने वाले, सुग्रीव आदि समस्त वानर समुदाय से सेव्यमान, अपनी हुंकार से समस्त राक्षसों को भयभीत करने वाले, अपने स्वामी श्री राम जी के चरणों का सदैव ध्यान करने वाले, वायुनन्दन का मैं ध्यान करता हूँ।

जप संख्या – 24 हजार

हवन द्रव्य – दूध, दही, घी, धान एवं फल

यन्त्र – पूर्ववत्

उपसर्ग एवं भयनाशक अन्य मन्त्र

ॐ हं हनुमते मां रक्ष रक्ष स्वाहा

•

विनियोग – पूर्ववत्

न्यास – पूर्ववत्

एवं ध्यान – पूर्ववत्

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

16

शिव

दशाक्षर शिव मन्त्र - ॐ नमो भगवते रुद्राय

— विनियोग —

अस्य दशाक्षररुद्रमन्त्रस्य बौद्धायनऋषि पंक्तिः छन्दः रुद्रो देवता ममाभीष्टसिद्धये जपे विनियोगः।

— ऋत्यादिन्यास —	— पञ्चांगन्यास —
ॐ बौधायनायत्तरषये नमः शिरसि	ॐ सद्योजाताय हृदयाय नमः
ॐ पंति, छन्देसे नमः मुखे	ॐ कामदेवाय शिरसे स्वाहा
ॐ श्रीरुद्रदेवतायै नमः हृदये	ॐ अघोराय शिखायै वषट
ॐ बीजाय नमः गुह्यो।	ॐ तत्पुरुषाय कवचाय हुम्
ॐ नमः शक्तये नमः वादयोः	ॐ ईशानाय अस्त्राय फद्

— ध्यान —

कैलासाचलसन्निभं त्रिनयनं पञ्चास्यमम्बायुतं,
नीलग्रीवमहीशभूषणद्धरं व्याघ्रत्वचाप्रावृतम्।
अक्षस्रग्वरकुण्डिकाभयकरं चान्द्रीं कलां बिभ्रतं,
गङ्गाम्भोविलसज्जटं दशभुजं वन्दे महेशं परम्॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

– कैलाश पर विराजमान, तीन नेत्र वाले, पाँचमुख वाले, अम्बा (पार्वती) सहित नीलकण्ठ, सर्पों के आभूषण धारण करने वाले, व्याघ्र चर्म लपेटे, हाथों में यथाक्रमेण अक्षमाला, वर, कुण्डिका एवं अभय, मस्तक पर चन्द्रकला धारण करने वाले गंगाजल से सुशोभित जटावाले, दश भुजाओं वाले परमशिव की वन्दना करता हूँ।

जप संख्या – दस लाख

हवन द्रव्य – घी एवं पायस

महामृत्युञ्जय पूजन-यन्त्र

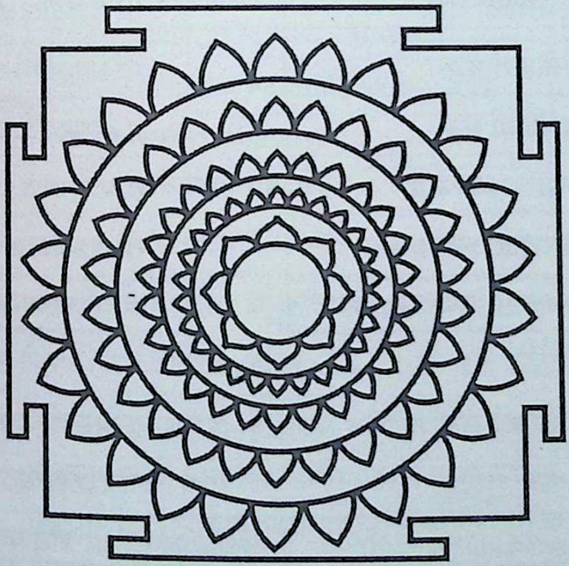

मृत्युञ्जय मन्त्र - ॐ जूं सः

– विनियोग –

अस्य श्रीमृत्युञ्जयमन्त्रस्य काहोलऋषि, देवीगायत्रीछन्दः मृत्यु९जयो देवता जूं बीजं, सः शक्ति, ममाभीष्टसिद्धये जपे विनियोगः।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

— ऋष्यादिन्यास —

ॐ काहोल ऋषये नमः शिरसि
ॐ देवीगायत्री छन्दसे नमः मुखे
ॐ मृत्युञ्जयदेवतायैनमः हृदये
ॐ जूं बीजाय नमः गुह्ये
ॐ सः शक्तये नमः पादयोः

— करन्यास —

सां अंगुष्ठाभ्यां नमः
सीं तर्जनीभ्यां नमः
सूं मध्यमाभ्यां नमः
सैं अनामिकाभ्यां नमः
सौं कनिष्ठकाभ्यां नमः
सः करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः

— षडङ्गन्यास —

सां हृदयाय नमः
सीं शिरसे स्वाहा
सूं शिखायै वषट्
सैं कवचाय हुम्
सौं नेत्रत्रयाय वौषट्
सः अस्त्राय फट्

— ध्यान —

चन्द्रार्काग्निविलोचनं स्मितमुखं पद्मद्वयान्तस्थितं,
मुद्रापाशमृगाक्षसूत्रविलसत्पाणिं हिमांशुप्रभम्।
कोटिरिन्दुगलत्सुधाप्लवतनुं हारादिभूषोज्वलं,
कान्त्या विश्वविमोहनं पशुपतिं मृत्युञ्जयं भावयेत्॥

जप संख्या – 1,25,000

हवन द्रव्य – घी, पायस

यन्त्र – पूर्ववत्

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

— महामृत्युञ्जय मन्त्र —

ॐ हौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वःत्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्द्धनम्।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् भूर्भुवः स्वरों जूं सः ॐ।

— विनियोग —

अस्य श्री महामृत्युञ्जयमन्त्रस्य वामदेवकाहोलवसिष्ठाः ऋषयः, पंक्तिगायत्र्य नुष्टप् छन्दाँसि, सदाशिवमहामृत्युञ्जयरुद्राः देवताः ह्रीं शक्तिः श्रीं बीजं ममाभीष्ट सिद्धये जपे विनियोगः।

— ऋष्यादिन्यास —

ॐ वामदेवकाहोलवसिष्ठेभ्यो ऋषिभ्यो नमः शिरसि
ॐ पंक्तिगायत्र्यनुष्टुब्छन्देभ्यो नमः मुखे
ॐ सदाशिवमहामृत्युञ्जयरूद्रदेवेभ्यो नमः हृदये
ॐ श्रीं बीजाय नमः गुह्ये
ॐ ह्रीं शक्तये नमः पादयोः

— षडङ्गन्यास —

ॐ हौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः त्र्यम्बकं ॐ नमो भगवते रुद्राय शूलपाणये स्वाहा हृदयाय नमः
ॐ हौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः यजामहे ॐ नमो भगवते रुद्राय अमृतमूर्तये मां जीवय शिरसे स्वाहा
ॐ हौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः सुगन्धिं पुष्टिवर्धनं ॐ नमो भगवते रुद्राय चन्द्रशिरसे जटिने स्वाहा – शिखायै वषट्
ॐ हौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः उर्वारुकमिवबन्धनात् ॐ नमो भगवते रुद्राय त्रिपुरान्तकाय हां ह्रीं – कवचाय हुम्
ॐ हौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः मृत्योर्मुक्षीय ॐ नमो भगवते रुद्राय त्रिलोचनाय ऋग्यजुसाममन्त्राय – नेत्रत्रयाय वौषट्
ॐ हौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः मा मृतात् ॐ नमो भगवते रुद्राय अग्नित्रयाय ज्वलज्वल मां रक्ष रक्ष ॐ अघोरास्त्राय – अस्त्राय फट्

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

— वर्णन्यास —

ॐ हौं जूं सः भूर्भुवः स्वः त्र्यं नमः पूर्वमुखे
ॐ हौं जूं सः भूर्भुवः स्वः म्बं नमः पश्चिममुखे
ॐ हौं जूं सः भूर्भुवः स्वः कं नमः दाक्षिणमुखे
ॐ हौं जूं सः भूर्भुवः स्वः यं नमः उत्तरमुखे
ॐ हौं जूं सः भूर्भुवः स्वः जां नमः शिरसि
ॐ हौं जूं सः भूर्भुवः स्वः मं नमः कण्ठे
ॐ हौं जूं सः भूर्भुवः स्वः हें नमः मुखे
ॐ हौं जूं सः भूर्भुवः स्वः सुं नमः नाभौ
ॐ हौं जूं सः भूर्भुवः स्वः गं नमः हृदि
ॐ हौं जूं सः भूर्भुवः स्वः न्धिं नमः पृष्ठे
ॐ हौं जूं सः भूर्भुवः स्वः पुं नमः कुक्षौ
ॐ हौं जूं सः भूर्भुवः स्वः ष्टिं नम लिंगे
ॐ हौं जूं सः भूर्भुवः स्वः वं नमः गुदे
ॐ हौं जूं सः भूर्भुवः स्वः र्धं नमः दक्षिणोरुमूले
ॐ हौं जूं सः भूर्भुवः स्वः नं नमः वामोरुमूले
ॐ हौं जूं सः भूर्भुवः स्वः उं नमः दक्षिणोरुमध्ये
ॐ हौं जूं सः भूर्भुवः स्वः र्वां नमः वामोरुमध्ये
ॐ हौं जूं सः भूर्भुवः स्वः रुं नमः दक्षिणजानुनि
ॐ हौं जूं सः भूर्भुवः स्वः कं नमः वामजानुनि
ॐ हौं जूं सः भूर्भुवः स्वः मिं नमः दक्षिणजानुवृत्ते
ॐ हौं जूं सः भूर्भुवः स्वः वं नमः वामजानुवृत्ते
ॐ हौं जूं सः भूर्भुवः स्वः बं नमः दक्षिणस्तने
ॐ हौं जूं सः भूर्भुवः स्वः न्धं नमः वामस्तने

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ॐ हौं जूं सः भूर्भुवः स्वः नां नमः दक्षिणपार्श्वे
ॐ हौं जूं सः भूर्भुवः स्वः मृं नमः वामपार्श्वे
ॐ हौं जूं सः भूर्भुवः स्वः त्यों नमः दक्षिणपादे
ॐ हौं जूं सः भूर्भुवः स्वः मुं नमः वामपादे
ॐ हौं जूं सः भूर्भुवः स्वः क्षीं नमः दक्षिणकरे
ॐ हौं जूं सः भूर्भुवः स्वः यं नमः वामकरे
ॐ हौं जूं सः भूर्भुवः स्वः मां नमः दक्षिणनासायाम्
ॐ हौं जूं सः भूर्भुवः स्वः मृं नमः वामनासायाम्
ॐ हौं जूं सः भूर्भुवः स्वः तां नमः मूर्ध्नि

— पदन्यास —

त्र्यम्बकं शिरसि यजामहे भ्रुवोः सुगन्धिं नेत्रयोः पुष्टिवर्द्धनम् मुखे उर्वारुक् गण्डयोः, इव हृदये बन्धनात् जठरे मृत्योः लिंगे मुक्षीय ऊर्वोः मा जान्वोः अमृतात् पादयोः

— ध्यान —

हस्ताम्भोजयुगस्थकुम्भयुगलादुद्धृत्य तोयं शिरः
सिञ्चन्तं करयोर्युगेन दधतं स्वांके सकुम्भौ करौ।
अक्षस्रङ्मृगहस्तमम्बुजगतं भूर्द्धस्थस्रबत्,
पीयूषोन्नतनुं भजे सगिरिजं मृत्युञ्जयं त्र्यम्बकम्॥

जप संख्या – एक लाख

हवन द्रव्य

1	बेलफल	2	तिल	3	खीर	4	घी
5	दूध	6	दही	7	दूर्वा	8	वट की समिधा
9	पलाश की समिधा			10	खैर की समिधा		

इन तीनों समिधाओं को घी, शहद एवं शक्कर में डुबोकर हवन करना चाहिए।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

17

कार्तवीर्य

चोरी गये एवं खोए हुए धन की प्राप्ति और घर से भागे व्यक्ति की वापसी के लिए—

— कार्तवीर्य-मन्त्र —

कार्तवीर्याजुनो नाम राजा बाहुसहस्रवान्।
तस्य संस्मरणादेव हतं नष्टं व लभ्यते॥

— विनियोग —

अस्य श्री कार्तवीर्याजुनमन्त्रस्य दत्तात्रेय ऋषि अनुष्टप् छन्दः श्री कार्तवीर्यार्जुनो देवता ममाभीष्ट सिद्धये जपे विनियोगः।

— ऋष्यादिन्यास —	— पञ्चागन्यास —
ॐ दत्तात्रेय ऋषये नमः शिरसि	कार्तवीर्यार्जुनो नाम हृदयाय नमः
ॐ अनुष्टुपूछन्देसे नमः मुरखे	राजाबाहु सहस्रवान् शिरसे स्वाहा
ॐ कार्तवीर्यार्जुनदेवतायै नमः हृदये	तस्य संस्मरणादेव शिखायै वषट
ॐ बीजाय नमः गुह्ये	हतं नष्टं च लभ्यते कवचाय हुम्
	कार्तवीर्यार्जुनो...लभ्यते अस्त्राय फट्

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

— ध्यान —

शिच्यमानं युवतिभिः क्रीडन्तं नर्मदाजले।
हस्तैर्जलौघं रुन्धन्तं ध्यायेन्मत्तं नृपोत्तमम्॥

– नर्मदा के जल में क्रीडा करते हुए, युवतियों द्वारा अभिषिञ्चित और नर्मदा की जलधारा को अवरुद्ध करने वाले नृपश्रेष्ठ कार्तवीर्यार्जुन का ध्यान करता हूँ।

जप संख्या – 10 हजार

हवन द्रव्य – तिल एवं घी

कार्तवीर्यार्जुनस्य पूजन-यन्त्र

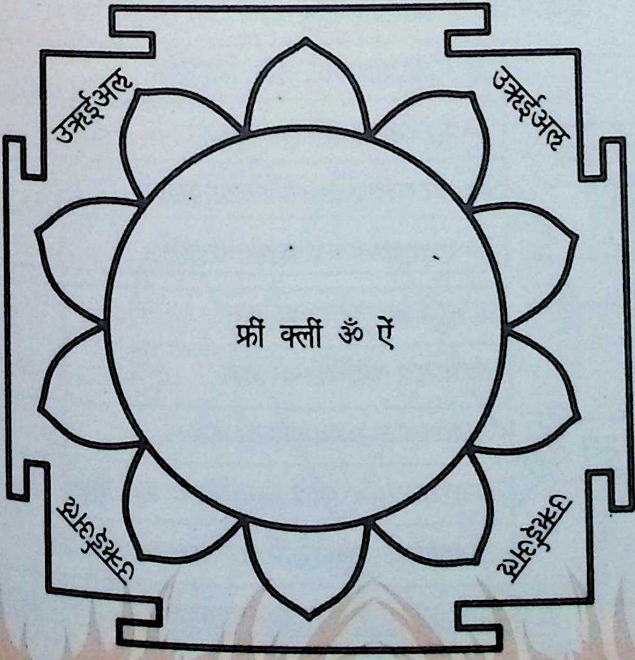

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

18

सम्पन्नता के लिए कुबेर

— कुबेर मन्त्र —

यक्षाय कुबेराय वैश्रवणाय धनधान्याधिपतये
धनधान्यसमृद्धिं मे देहि दापय स्वाहा।

— विनियोग —

अस्य श्रीकुबेरमन्त्रस्य विश्रवा ऋषिः बृहती छन्दः धनेश्वरः
कुबेरो देवता ममाभीष्टसिद्धये जपे विनियोगः।

ऋष्यादिन्यास	ॐ विश्रवाऋषये नमः शिरसि
	ॐ बृहतीछन्दसे नमः मुखे
	ॐ श्री कुबेरदेवतायै नमः हृदये
	ॐ स्वाहाशक्तये नमः पादयोः

करन्यास	यक्षाय अंगुष्ठाभ्यां नमः
	कुबेराय तर्जनीभ्यां नमः
	वैश्रवणाय मध्यमाभ्यां नमः
	धनधान्याद्धिपतये अनामिकाभ्यां नमः
	धनधान्य समृद्धिं मे कनिष्ठकाभ्यां नमः
	देहि दापय स्वाहा करतल करपृष्ठाभ्यां नमः

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

षडङ्गन्यास	
	यक्षाय हृदयाय नमः
	कुबेराय शिरसे स्वाहा
	वैश्रवणाय शिखायै वषट्
	धनधान्याधिपतये कवचाय हुम्
	धनधान्य समृद्धिं मे नेत्रत्रयाय वौषट्
	देहि दापय स्वाहा अस्त्राय फट्

— ध्यान —

मनुजबाह्यविमानवरस्थितं गरूडरत्ननिभं निधिनायकम्।
शिवसखं मुकुटादिविभूषितं वरगदे दधतं भज तुन्दिलम्।।

जप संख्या - एक लाख

हवन द्रव्य - तिल एवं घी

श्री कुबेर यन्त्र

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

— कुबेर का अन्य मन्त्र —

ॐ श्रीं ॐ ह्रीं श्रीं ह्रीं क्लीं श्रीं क्लीं वित्तेश्वराय नमः

— विनियोग —

अस्य श्रीकुबेरमन्त्रस्य विश्रवा ऋषि बृहती छन्दः शिवमित्रं धनेश्वरो देवता ममाभीष्टसिद्धये जपे विनियोगः।

— ऋष्यादिन्यास —

ॐ दक्षाय ऋषये नमः शिरसि
ॐ विराट्छन्से नमः मुखे
ॐ लक्ष्मी देवतायै नमः हृदये
ॐ नमः बीजाय नमः गुह्ये
ॐ स्वाहा शक्तये नमः पादयो

— करन्यास —

ॐ श्रीं ॐ अंगुष्ठाभ्यां नमः
ह्रीं श्रीं तर्जनीभ्यां नमः
ह्रीं क्लीं मध्यमाभ्यां नमः
श्रीं क्लीं अनामिकाभ्यां नमः
वित्तेश्वराय कनिष्ठकाभ्यां नमः
नमः करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः

— षडङ्गन्यास —

ॐ श्रीं ॐ हृदयाय नमः
ह्रीं श्रीं शिरसे स्वाहा
ह्रीं क्लीं शिखायै वषट्
श्रीं क्लीं कवचाय हुम्
वित्तेश्वराय नेत्रत्रयाय वौषट्
नमः अस्त्राय फट्

ध्यान – पूर्ववत्

यन्त्र – पूर्ववत्

जप संख्या, हवन द्रव्य एवं यन्त्र – पूर्ववत्

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

19

दुर्गा

नवार्णमन्त्र (दुर्गा) - ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे

— विनियोग —

अस्य श्री नवार्णमन्त्रस्य ब्रह्माविष्णरुद्राः ऋषयः, गायत्र्युष्णिगनुष्टुप् छन्दाँसि श्री महाकाली महालक्ष्मी-महासरस्वती देवताः नन्दा शाकम्भरीभीमाः शक्तयः रक्तदन्तिकादुर्गाभ्रामर्यो बीजानि अग्निवायुसूर्यस्तत्वानि ऋग्यजुसाम-वेदा ध्यानानि सर्वार्थसिद्धये जपे विनियोगः।

ऋष्यादिन्यास	ब्रह्मविष्णरुद्रऋषिभ्यो नमः शिरसि
	गायत्र्युष्णिगनुष्टुप् छन्देभ्यो नमः मुखे
	महाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वतीदेवताभ्यो नमः हृदि
	नन्दाशाकम्भरीभीमाशक्तिभ्यो नमः दक्षिणस्तने
	रक्तदन्तिकादुर्गाभ्रामरीबीजेभ्यो नमः वामस्तने
	अग्निवायुसूर्यतत्वेभ्यो नमः मस्तके

— करन्यास —

ऐं अंगुष्ठाभ्यां नमः
ह्रीं तर्जनीभ्यां नमः
क्लीं मध्यमाभ्यां नमः
चामुण्डायै अनामिकाभ्यां नमः
विच्चे कनिष्ठकाभ्यां नमः
ऐं.....विच्चे करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः

— षडङ्गन्यास —

ऐं हृदयाय नमः
ह्रीं शिरसे स्वाहा
क्लीं शिखायै वषट्
चामुण्डायै कवचाय हुम्
विच्चे नेत्रत्रयाय वौषट्
ऐं.....विच्चे अस्त्राय फट्

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वर्णन्यास

ऐं नमः शिखायाम्	ह्रीं नमः दक्षिणनेत्रे
क्लीं नमः वामनेत्रे	चां नमः दक्षिणकर्णे
मुं नमः वामकर्णे	डां नमः दक्षिणनासायाम्
यै नमः वामनासायाम्	विं नमः मुखे
च्चें नमः गुदे	ऐं.विच्चे अस्त्रायफट् सर्वाङ्गे

ध्यान

खड्गं चक्रगदेशुचापपरिघाच्छूलं भुशुण्डीं शिरः
शंखं सन्दधतीं करैस्त्रिनयनां सर्वाङ्गभूषावृताम्।
नीलाश्मद्युतिमास्यपाददशकां सेवे महाकालिकां,
यामस्तौत्स्वपिते हरौ कमलजो हन्तुं मधुं कैटभम्॥
अक्षस्रक्परशुं गदेषुकुलिशं पद्मं धनुष्कुण्डिकां,
दण्डं शक्तिमसिं च चर्मजलजं घण्टां सुराभाजनम्।
शूलं पाशसुदर्शनेच दद्धतीं हस्तैः प्रवालप्रभां,
सेवे सौरिभमर्दिनीमिह महालक्ष्मीं सरोजस्थिताम्।
घण्टाशूलहलानि शंखमुसले चक्रं धनुः सायकं,
हस्ताब्जैर्दधतीं घनान्तविलसच्छीतांशुतुल्यप्रभाम्।
गौरीदेहसमुद्भवां त्रिजगतामाधारभूतां महा-
पूर्वामत्रसरस्वतीमनुभजे शुम्भादिदैत्यार्दिनीम्॥

जप संख्या - चार लाख

हवन द्रव्य - खीर एवं घी

दुर्गा पूजन-यन्त्र

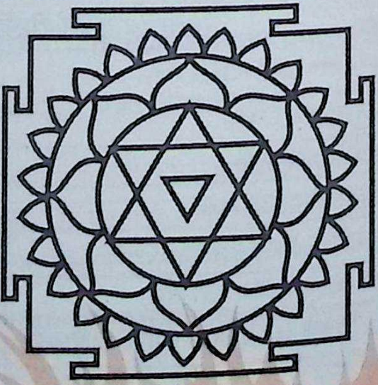

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

20

लक्ष्मी

लक्ष्मी मन्त्र - नमः कमलवासिन्यै स्वाहा

— विनियोग —

अस्य लक्ष्मीमन्त्रस्य दक्षऋषिः विराट् छन्दः लक्ष्मीदेवता
ममाभीष्टसिद्धये जपे विनियोगः।

— ऋष्यादिन्यास —

ॐ दक्षाय ऋषयेनमः शिरसि
ॐ विराट्छन्दसे नमः मुखे
ॐ लक्ष्मी देवतायै नमः, हृदये
ॐ नमः बीजाय नमः गुह्ये
ॐ स्वाहा शक्तये नमः पादयो

— पञ्चांगन्यास —

ॐ दैव्यै नमः हृदयाय नमः
ॐ पद्मायै नमः शिरसे स्वाहा
ॐ विष्णुपत्न्यै नमः शिखायै वषट्
ॐ वरदायै नमः कवचाय हुम्
ॐ कमलरूपायै नमः अस्त्रायफट्

— ध्यान —

आसीना सरसीरुहे स्मितमुखी हस्ताम्बुजैर्विभ्रती,
दानं पद्मयुगाभये च वपुषा सौदामिनी-सन्निभा।
मुक्ताहारविराजमानपृथुलोत्तुङ्गस्तनोद्भासिनी,
पायाद्वः कमला कराक्षविभवैरानन्दयन्तो हरिम्।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

– कमल पर आसीन, प्रसन्न वदन, दो हाथों में कमल, एक में वरद एवं अन्य में अभय मुद्रा वाली, विद्युत जैसी कान्तिवाली, मोतियों के हार से सुशोभित वक्षस्थलवाली और अपने कटाक्ष से विष्णु को आनन्दित करने वाली लक्ष्मी हमारी रक्षा करें।

जप संख्या – 10 लाख

हवन द्रव्य – घी, शहद एवं शर्करायुक्त कमल के फूल

लक्ष्मी यन्त्रम्

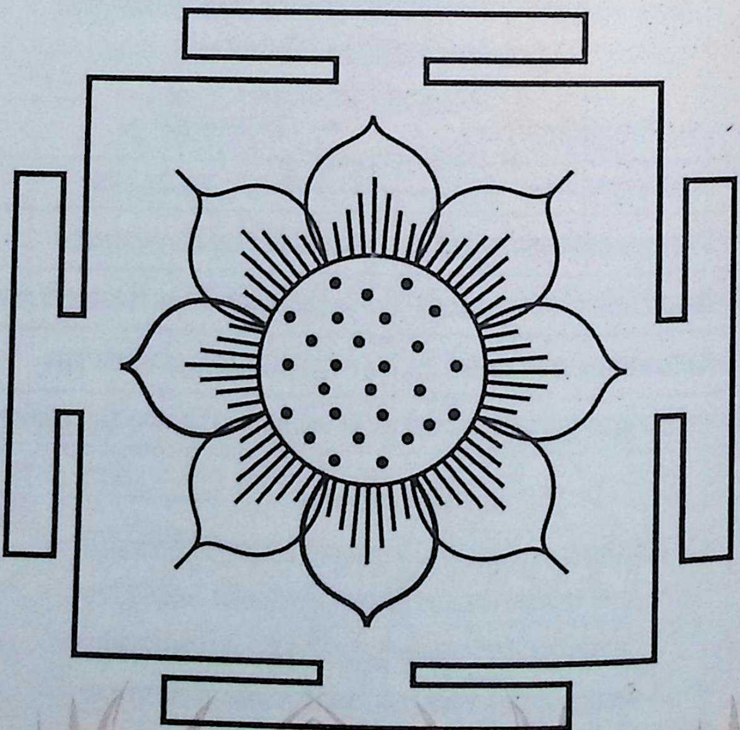

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

महालक्ष्मी मन्त्र

ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद
श्रीं ह्रीं श्रीं महालक्ष्म्यै नमः

— विनियोग —

अस्य श्रीमहालक्ष्मीमन्त्रस्य ब्रह्माऋषि गायत्री छन्दः, महालक्ष्मी देवता, श्रीं बीजं ह्रीं शक्तिः सर्वार्थसिद्धये जपे विनियोगः।

— ऋष्यादिन्यास —

ॐ ब्रह्मणे ऋषये नमः शिरसि
ॐ गायत्रीछन्दसे नमः मुखे
ॐ महालक्ष्मीदेवतायै नमः हृदये
ॐ श्रीं बीजाय नमः गुह्ये
ॐ ह्रीं शक्तये नमः पादयोः

— करन्यास —

ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं कमले श्रीं ह्रीं श्रीं अंगुष्ठाभ्यां नमः
ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं कमलालये श्रीं ह्रीं श्रीं तर्जनीभ्यां नमः
ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं प्रसीद श्रीं ह्रीं श्रीं मध्यमाभ्यां नमः
ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं प्रसीद श्रीं ह्रीं श्रीं अनामिकाभ्यां नमः
ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं महालक्ष्म्यै श्रीं ह्रीं श्रीं कनिष्ठकाभ्यां नमः
ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं नमः श्रीं ह्रीं श्रीं करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

— अंगन्यास —

ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं कमले श्रीं ह्रीं श्रीं हृदयाय नमः
ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं कमलालये श्रीं ह्रीं श्रीं शिरसे स्वाहा
ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं प्रसीद श्रीं ह्रीं श्रीं शिखायै वषट्
ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं प्रसीद श्रीं ह्रीं श्रीं कवचाय हुम्
ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं महालक्ष्म्यै श्रीं ह्रीं श्रीं नेत्रत्रयाय वौषट्
ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं नमः श्रीं ह्रीं श्रीं अस्त्राय फट्

— ध्यान —

सिन्दूरारुणकान्तिमब्जवसतिं सौन्दर्यवारां निधिं,
कोटीराङ्गदहारकुण्डलकटीसूत्रादिभिर्भूषिताम्।
हस्ताब्जैर्वसुपात्रमब्जयुगलादर्शौ वहन्तीं परा।
मावीतां परिचारिकाभिरनिशं ध्यायेत्प्रियां शार्ङ्गिणः।।

– सिन्दूर जैसी आभावाली, कमल पर आसीन, सौन्दर्य की मूर्ति, हार, कुण्डल, करधनी आदि आभूषणों से सुशोभित, हाथों में धनपात्र, कमल (दो) एवं दर्पण धारण करने वाली, परिचारिकाओं से सेवित विष्णु की प्रिया का ध्यान करना चाहिए।

जप संख्या – एक लाख,

यन्त्र – पूर्ववत्

हवन द्रव्य – घी, शहद एवं शक्कर से युक्त बेलफल

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

21

सरस्वती

वागीश्वरी (सरस्वती) मन्त्र - वद वद वाग्वादिनि स्वाहा

— विनियोग —

अस्य श्रीवाग्वादिनिमन्त्रस्य कण्वऋषि विराट्छन्द श्रीवाग्वादिनि सरस्वती देवता ममाभीष्टसिद्धये जपे विनियोगः।

— ऋष्यादिन्यास —

ॐ कष्वायऋषये नमः शिरसि
ॐ विराट् छन्दसे नमः मुखे
ॐ वाग्वादिनि देवतायै नमः हृदये
ॐ स्वाहा शक्तये नमः पादयोः

— करन्यास —

अं कं खं गं घं ङं आं अंगुष्ठाभ्यां नमः
इं चं छं जं झं ञं ईं तर्जनीभ्यां नमः
उं टं ठं डं ढं णं ऊं मध्यमाभ्यां नमः
एं तं थं दं द्धं नं ऐं अनामिकाभ्यां नमः
ओं पं फं बं भं मं औं कनिष्ठकाभ्यां नमः
अं यं रं लं वं शं षं सं हं क्षं अः करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

— अंगन्यास —

अं कं खं गं घं ङं आं हृदयाय नमः
इं चं छं जं झं ञं ईं शिरसे स्वाहा
उं टं ठं डं ढं णं ऊं शिखायै वषट्
एं तं थं दं धं नं ऐं कवचाय हुम्
ओं पं फं बं भं मं औं नेत्रत्रयाय वौषट्
अं यं रं लं वं शं षं सं हं क्षं अः अस्त्राय फट्

— वर्णन्यास —

1	वं नमः शिरसि	2	दं नमः दक्षिणकर्णे
3	वं नमः वामकर्णे	4	दं नमः दक्षिणनेत्रे
5	वां नमः वामनेत्रे	6	ग्वां नमः दक्षिणनासायाम्
7	दिं नमः वामनासायाम्	8	निं नमः मुखे
9	स्वां नमः लिंगे	10	हां नमः गुह्ये

— ध्यान —

तरुणशकलमिन्दोर्बिभ्रती शुभ्रकान्तिः
कुचभरनमिताङ्गी सन्निषण्णा सिजाब्जे।
निजकर-कमलोद्यल्लेखनीपुस्तकश्रीः
सकलविभवसिद्धयै पातु वाग्देवता नः॥

— नवीन चन्द्रकला को धारण करने वाली, देदीप्यमान–कान्ति, कुचभार से झुकी हुई, श्वेतकमल पर आसीन चारों हाथों में कमलकली, लेखनी, पुस्तक एवं श्री धारण करने वाली वाग्देवी वैभव एवं सिद्धि के लिए हमारी रक्षा करें।

जप संख्या – एक लाख

हवन द्रव्य – दुग्ध मिश्रित कमल फूल

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वागीश्वरी (सरस्वती) मन्त्र

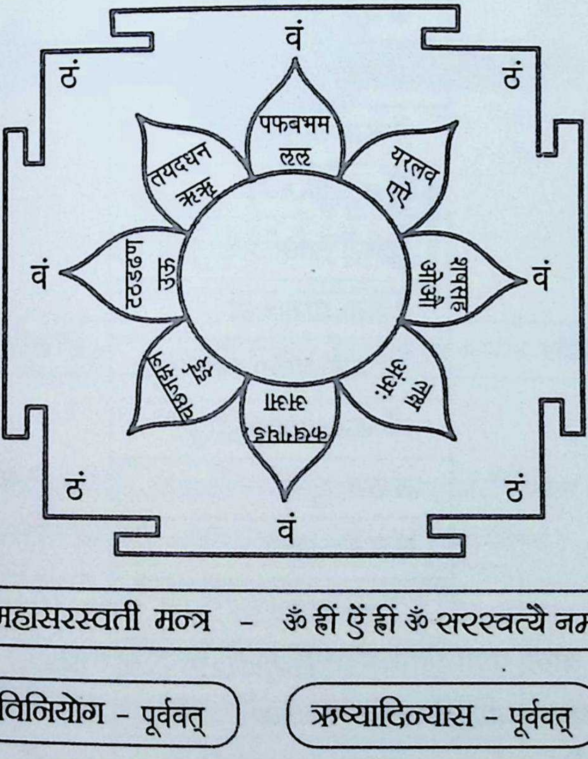

महासरस्वती मन्त्र - ॐ ह्रीं ऐं ह्रीं ॐ सरस्वत्यै नमः

विनियोग - पूर्ववत्

ऋष्यादिन्यास - पूर्ववत्

करन्यास

ऐं अंगुष्ठाभ्यां नमः
ऐं तर्जनीभ्यां नमः
ऐं मध्यमाभ्यां नमः
ऐं अनामिकाभ्यां नमः
ऐं कनिष्ठकाभ्यां नमः
ऐं करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः

षडङ्गन्यास

ऐं हृदयाय नमः
ऐं शिरसे स्वाहा
ऐं शिखायै वषट्
ऐं कवचाय हुम्
ऐं नेत्रत्रयाय वौषट्
ऐं अस्त्राय फट्

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मन्त्रन्यास

ॐ नमः ब्रह्मरन्ध्रे
ह्रीं नमः भ्रुवोर्मध्ये
ऐं नमः दक्षिणनेत्रे
ह्रीं नमः वामनेत्रे
सं नमः दक्षिणकर्णे
रं नमः वामकर्णे
स्वं नमः दक्षिणनासापुटे
त्यैं नमः वामनासापुटे
नं नमः मुखे
मं नमः गुह्ये

ध्यान

वाणीं पूर्णनिशाकरोज्वलमुखीं कर्पूरकुन्दप्रभां,
चन्द्रार्ध्दाङ्कितमस्तकां निजकरैः संविभ्रतीमादरात्।
वीणामक्षगुणं सुधाढ्यकलशं वीणाञ्च तुङ्गस्तनीं,
दिव्यैराभरणविभूषितनुं हंसाधिरूढां भजे॥

– पूर्णचन्द्र के समान देदीप्यमान मुखवाली, कपूर एवं कुन्द जैसे वर्ण वाली, चन्द्रकला धारण करने वाली, चारों हाथों में वीणा, अक्षसूत्र, अमृत कलश एवं पुस्तक धारण करने वाली, पीनस्तनी, दिव्य आभूषणों से सुशोभित एवं हंस पर विराजमान सरस्वती की वन्दना करता हूँ।

जप संख्या – 12 जाख

हवन द्रव्य – घी एवं कमलपुष्प

यन्त्र – पूर्ववत्

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

22

महागौरी

महागौरीमन्त्र - ॐ ह्रीं महागौरी विवाहबाद्धां नाशय स्वाहा

— विनियोग —

अस्य महागौरीमन्त्रस्य अजऋषि गायत्रीछन्दः महागौरीदेवता ह्रीं बीजं स्वाहा शक्तिः ममाभीष्टसिद्धये जपे विनियोगः।

ऋष्यादिन्यास

ॐ अजाय ऋषये नमः शिरसि
ॐ गायत्रीछन्दसे नमः मुखे
ॐ महागौरीदेवतायै नमः हृदि
ॐ ह्रीं बीजाय नमः गुह्ये
ॐ स्वाहा शक्तये नमः पादयोः

— करन्यास —

ॐ अंगुष्ठाभ्यां नमः
ह्रीं तर्जनीभ्यां नमः
महागौरी मध्यमाभ्यां नमः
विवाहबाधां अनामिकाभ्यां नमः
नाशय कनिष्ठकाभ्यां नमः
स्वाहा करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः

— अंगन्यास —

ॐ हृदयाय नमः
ह्रीं शिरसे स्वाहा
महागौरी शिखायै वषट्
विवाहबाधां कवचाय हुम्
नाशय नेत्रत्रयाय वौषट्
स्वाहा अस्त्राय फट्

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

— ध्यान —

गीर्वाणसंद्धार्चितपादपंकजारुणप्रभा बालशशांकशेखरा।
रक्ताम्बरालेपनपुष्पयुङ् मुदे सृणिं सपाशं दद्धती शिवास्तु नः।

– देवताओं द्वारा जिसके चरणों की पूजा होती है, अरुण आभावाली, मस्तक पर चन्द्रकला धारण करने वाली, लाल वस्त्र, चन्दन एवं पुष्पों से अलंकृत, अपने दोनों हाथों में अंकुश एवं पाश धारण करने वाली गौरी हम पर प्रसन्न हों।

जप संख्या – 64 हजार

हवन द्रव्य – घी एवं पायस

महागौरी यन्त्र

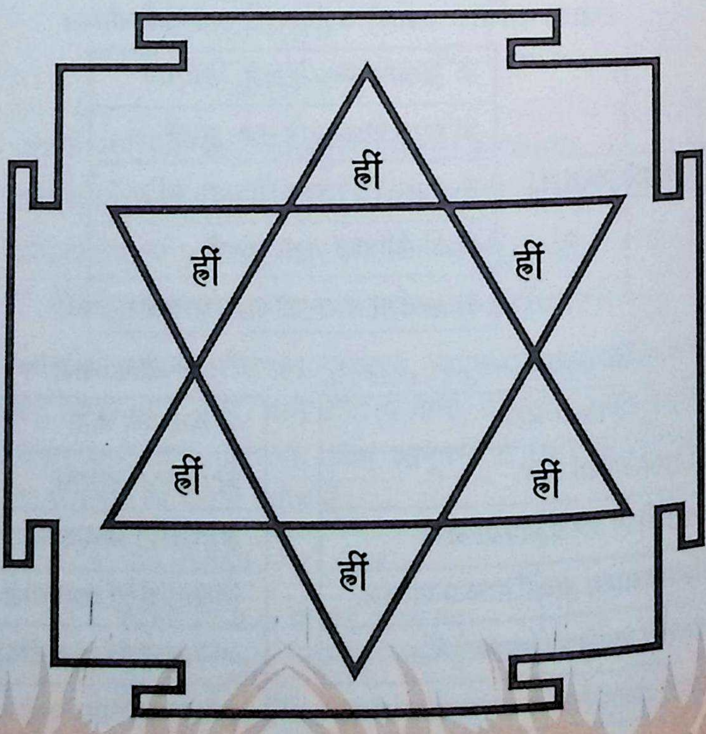

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मंगलागौरिमन्त्र
ॐ ह्रीं मंगले गौरि विवाहबाद्धां नाशय स्वाहा

— विनियोग —

अस्य श्री मंगलागौरीमन्त्रस्य अजऋषि, - गायत्रीछन्दः श्रीमंगला गौरीदेवता ह्रीं बीजं स्वाहा शक्तिः ममाभीष्टसिद्धये जपे विनियोगः।

ऋष्यादिन्यास – पूर्ववत्

— करन्यास —	— षडङ्गन्यास —
ॐ ह्रीं अंगुष्ठाभ्यां नमः	ॐ ह्रीं हृदयाय नमः
मंगले तर्जनीभ्यां नमः	मंगले शिरसे स्वाहा
गौरि मध्यमाभ्यां नमः	गौरि शिखायै वषट्
विवाहबाद्धां अनामिकाभ्यां नमः	विवाहबाद्धां कवचाय हुम्
नाशय कनिष्ठकाभ्यां नमः	नाशय नेत्रत्रयाय वौषट्
स्वाहा करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः	स्वाहा अस्त्राय फट्

ध्यान – पूर्ववत्

जप संख्या – पूर्ववत्

हवन द्रव्य एवं यन्त्र – पूर्ववत्

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

23

दरिद्रतानाशक रवि

दरिद्रतानाशक रविमन्त्र - ॐ स्रीं घृणि सूर्य आदित्यः श्रीं।

विनियोग

अस्य श्री सूर्यमन्त्रस्य भृगुऋषिः गायत्रीछन्दः भगवान् सूर्यो देवता ह्रीं बीजं श्रीं शक्तिः ममाभीष्ट सिद्धये जपे विनियोगः।

ऋष्यादिन्यास

ॐ भृगवे ऋषये नमः शिरसि
ॐ गायत्रीछन्दसे नमः मुखे
ॐ सूर्याय देवतायै नमः हृदि
ॐ ह्रीं बीजाय नमः गुह्ये
ॐ श्रीं शक्तये नमः पादयोः

षडङ्ग-न्यास

सत्यतेजोज्वालामणे हुं फट् स्वाहा हृदयाय नमः
ब्रह्मतेजोज्वालामणे हुं फट् स्वाहा शिरसे स्वाहा
विष्णुतेजोज्वालामणे हुं फट् स्वाहा शिखायै वषट्
रुद्रतेजोज्वालामणे हुं फट् स्वाहा कवचाय हुम्
अग्नितेजोज्वालामणे हुं फट् स्वाहा नेत्रत्रयाय वौषट्
सर्वतेजोज्वालामणे हुं फट् स्वाहा अस्त्राय फट्

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अंगन्यास

ह्रीं ॐ श्रीं हृदयाय नमः
ह्रीं घृं श्रीं शिरसे स्वाहा
ह्रीं णिं श्रीं शिखायै वषट्
ह्रीं सूं श्रीं कवचाय हुम्
ह्रीं र्यं श्रीं नेत्रत्रयाय वौषट्
ह्रीं आं श्रीं अस्त्राय फट्
ह्रीं दिं श्रीं उदराय नमः उदरे
ह्रीं त्यं श्रीं पृष्ठाय नमः पृष्ठे

पंचमूर्तिन्यास

ॐ लृं आदित्याय नमः मूर्ध्नि
ॐ ि रवये नमः मुखे
ॐ उं भानवे नमः हृदि
ॐ इं भास्कराय नमः लिंगे
ॐ अं सूर्याय नमः पादयोः

वर्णन्यास

ॐ ह्रीं ॐ श्रीं नमः मूर्ध्नि
ॐ ह्रीं घृं श्रीं नमः मुखे
ॐ ह्रीं णिं श्रीं नमः कण्ठे
ॐ ह्रीं सूं श्रीं नमः हृदि
ॐ ह्रीं र्यं श्रीं नमः कुक्षौ
ॐ ह्रीं आं श्रीं नमः नाभौ
ॐ ह्रीं दिं श्रीं नमः जंघयोः
ॐ ह्रीं त्यं श्रीं नमः पादयोः

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ग्रहन्यास

अं आं.......लं आदित्याय भगवते नमः आद्धारे
लृं लॄं.......अः सोमाय भगवते नमः लिंगे
कं खं गं घं ङं अंगारकाय भगवते नमः नाभौ
चं छं जं झं ञं बुधाय भगवते नमः हृदि
टं ठं डं ढं णं बृहस्पतये भगवते नमः कण्ठे
तं थं दं धं नं शुक्राय भगवते नमः मुखे
पं फं बं भं मं शनैश्चराय भगवते नमः भ्रूमध्ये
यं रं लं वं राहवे भगवते नमः ललाटे
शं षं सं हं केतवे भगवते नमः ब्रह्मरन्ध्रे

ध्यान

शोणाम्भोरुहसंस्थितं त्रिनयनं वेदत्रयी विग्रहं,
दानाम्भोजयुगाभयानिदधतं हस्तैः प्रवालप्रभम्।
केयूराङ्गदहारकंकणधरं कर्णोल्लसत्कुण्डलं,
लोकोत्पत्तिविनाशपालनकरं सूर्य्यं गुणाब्धिं भजे।

जप संख्या – 10 लाख

हवन द्रव्य – तिल एवं कमल

श्री सूर्य पूजन-यन्त्र

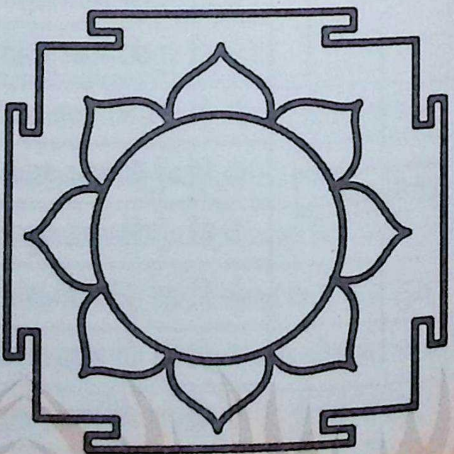

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

24

मन्त्र के मूल स्रोत

जैसे वैदिक मन्त्रों का मूल स्रोत वैदिक संहिताएँ हैं। ऋग्वेद संहिता, शुक्ल यजुर्वेद संहिता, कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तरीय संहिता, सामवेद संहिता एवं अथर्ववेद संहिता के विभिन्न सूक्तों से उपासना के वैदिक मन्त्र मिलते हैं।

वैसे ही तान्त्रिक मन्त्रों का स्रोत तन्त्रागम है। आगम तत्त्व विलास में परम्परागत 64 तन्त्रों का उल्लेख मिलता है, यथा –

1	स्वतन्त्र तन्त्र	2	फेत्कारिणीतन्त्र	3	उत्तर तन्त्र
4	नीलतन्त्र	5	वीरतन्त्र	6	कुमारी तन्त्र
7	कालीतन्त्र	8	नारायणीतन्त्र	9	तारिणीतन्त्र
10	बालातन्त्र	11	समयाचार	12	भैरवतन्त्र
13	भैरवीतन्त्र	14	त्रिपुरातन्त्र	15	वामकेश्वर तन्त्र
16	कुटकुटेश्वर तन्त्र	17	मातृका तन्त्र	18	सनत्कुमारतन्त्र
19	विशुद्धेश्वर तन्त्र	20	सम्मोहन तन्त्र	21	गौतमीय तन्त्र
22	बृहद्गौतमीय तन्त्र	23	भूतभैरवतन्त्र	24	चामुण्डातन्त्र
25	पिंगलातन्त्र	26	वाराहीतन्त्र	27	मुण्डमालातन्त्र
28	योगिनीतन्त्र	29	मालिनीविजयतन्त्र	30	स्वच्छन्द भैरवतन्त्र

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

31	महातन्त्र	32	शक्तितन्त्र	33	चिन्तामणितन्त्र
34	उन्मत्तभैरवतन्त्र	35	त्रैलोक्यसारतन्त्र	36	विश्वसार तन्त्र
37	तन्त्रामृत	38	महाफेत्कारिणी तन्त्र	39	बारवीय तन्त्र
40	तोडलतन्त्र	41	मालिनीतन्त्र	42	ललितातन्त्र
43	त्रिशक्ति तन्त्र	44	राजराजेश्वरीतन्त्र	45	महामाहेश्वरी तन्त्र
46	गवाक्षतन्त्र	47	गा़न्धर्वतन्त्र	48	त्रैलोक्यमोहनतन्त्र
49	हंस पारमेश्वरतन्त्र	50	हंस माहेश्वर तन्त्र	51	कामधेनु तन्त्र
52	वर्णविलासतन्त्र	53	मायातन्त्र	54	मन्त्रराज
55	कुब्जिकातन्त्र	56	विज्ञानलतिका तन्त्र	57	लिङ्गागम
58	कालोत्तरतन्त्र	59	ब्रह्मयामलतन्त्र	60	आदियामल
61	रूद्रयामल	62	बृहद्यामल	63	सिद्धयामल
		64	कल्पसूत्र		

आदि–कालीन इन तन्त्र ग्रन्थों की परम्परा में अनेक ग्रन्थों की रचना हुई, जिनकी निश्चित संख्या बतायी नहीं जा सकती। तिब्बत, नेपाल, भूटान, सिक्किम, बर्मा, भारत एवं श्रीलंका के पुस्तकालयों एवं पोथीखानों में हस्तलिखित एवं प्रकाशित जो तन्त्र ग्रन्थ अपूर्ण या सम्पूर्ण रूप में इस समय उपलब्ध हैं–उन परवर्ती तान्त्रिक ग्रन्थों की तालिका इस प्रकार है–

1	मत्स्यसूक्त	2	कुलसूक्त	3	कामराज
4	शिवागम	5	उड्डीशतन्त्र	6	कुलोड्डीशतन्त्र
7	वीरभद्रोड्डीशतन्त्र	8	भूतडामर	9	डामरतन्त्र

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

10	यक्षडामरतन्त्र	11	कुलसर्वस्व	12	कालिकाकुलसर्वस्व
13	कुलचूड़ामणि	14	दिव्यतन्त्र	15	कुलसार
16	कुलार्णव	17	कुलामृत	18	कुलावली
19	कालीकुलार्णव	20	कुलप्रकाशतन्त्र	21	वासिष्ठतन्त्र
22	सिद्धसारस्वततन्त्र	23	योगिनीहृदय	24	करालीहृदय
25	मातृकार्णव	26	योगिनीजाल कुरक तन्त्र	27	लक्ष्मीकुलार्णव
28	तारार्णव	29	चन्द्रपीठ तन्त्र	30	मेरूतन्त्र
31	चतुःशतीतन्त्र	32	तत्त्वबोध	33	महीगतन्त्र
34	स्वच्छन्द सार संग्रह	35	ताराप्रदीप	36	संकेतचन्द्रोदय
37	षट्त्रिंशतत्वक	38	लक्ष्यनिर्णय	39	त्रिपुरार्णव
40	विष्णुधर्मोत्तर	41	मन्त्रार्णव	42	वैष्णवामृत
43	मानसोल्लासतन्त्र	44	पूजाप्रदीप	45	भक्तिमञ्जरी
46	भुवनेश्वरी तन्त्र	47	पारिजाततन्त्र	48	प्रयोगसार
49	कामरत्न	50	क्रियासार	51	आगमदीपिका
52	भावचूडामणि	53	तन्त्रचूडामणि	54	बृहद्श्रीक्रम
55	श्रीक्रमसिद्धान्त शेखर	56	गणेशविमर्षिणी	57	मन्त्रमुक्तावली
58	तत्त्वकौमुदी	59	तन्त्रकौमुदी	60	मन्त्रतन्त्रप्रकाश
61	रामार्चनचन्द्रिका	62	शारदा तिलक	63	ज्ञानार्णव
64	सारसमुच्चय	65	कल्पद्रुम	66	ज्ञानमाला
67	पुरश्चरणचन्द्रिका	68	आगमोत्तर	69	तत्त्वसार

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

70	सारसंग्रह	71	देवप्रकाशिनी	72	तन्त्रार्णव
73	क्रमदीपिका	74	ताराहस्य	75	श्यामारहस्य
76	तन्त्ररत्न	77	तन्त्रप्रदीप	78	ताराविलास
79	विश्वमातृका	80	प्रपञ्चसार	81	तन्त्रसार
82	रत्नावली	83	सिद्धीश्वरतन्त्र	84	नित्यतन्त्र
85	देव्यागम	86	निबन्धतन्त्र	87	राधातन्त्र
88	कामाख्यातन्त्र	89	यन्त्र चिन्तामणि	90	कालीविलास
91	महाचीनतन्त्र	92	मन्त्रमहोदधि	93	मन्त्रमहार्णव
94	मन्त्रयोग संहिता	95	तन्त्रालोक	96	बृहद्तन्त्रसार

प्राचीन एवं परवर्ती तन्त्रग्रन्थों की सूची के आधार पर कहा जा सकता है कि मन्त्र एवं तन्त्र वाङ्मय अत्यन्त व्यापक है। वस्तुतः मन्त्र अनन्त हैं और उनका इस कैपसूल कोर्स में पूरी तरह समावेश नहीं किया जा सकता। इस पाठ्यक्रम का उद्देश्य मन्त्रशास्त्र की व्यापकता, मानव जीवन में उसकी उपयोगिता और मन्त्र, तन्त्र एवं यन्त्र के रूप में चिरन्तन काल से प्रवाहित चिन्तन धारा से आपका परिचय कराना है।

मन्त्र, यन्त्र एवं तन्त्र तात्त्विक दृष्टि से भिन्न-भिन्न नहीं हैं, अपितु एक ही सत्य के तीन प्रकार या एक ही शक्ति के तीन रूप हैं। व्यक्ति की प्रसुप्त शक्ति को जागृत कर दिव्य शक्ति के सामञ्जस्य से उसमें गुरूतर शक्ति का संचार करने वाला गूढ़ ज्ञान मन्त्र कहलाता है। मन्त्र का चित्रात्मक या प्रतीकात्मक रूप यन्त्र और क्रियात्मक विज्ञान तन्त्र कहलाता है। इस प्रकार मन्त्र, यन्त्र एवं तन्त्र इन तीनों में तात्त्विक या पारमार्थिक दृष्टि से अभेद है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मन्त्र का व्यापक क्षेत्र

मन्त्र का सम्बन्ध केवल वैदिक या तान्त्रिक संस्कृति से ही नहीं, अपितु इसका सम्बन्ध मानव संस्कृति से है। विश्व में ऐसा कोई धर्म नहीं और ऐसा कोई आस्थावान् प्राणी नहीं जो इससे सम्बद्ध न हो। जैन, बौद्ध, सिक्ख, मुस्लिम एवं ईसाई आदि सभी धर्मों में मन्त्र साधना एवं उपासना को सर्वोत्तम साधन के रूप में जाना और पहचाना जा सकता है।

जैन शास्त्रों में मन्त्र शास्त्र द्वादशांग वाणी जितने प्राचीन हैं। द्वादशांग वाणी के बारह अंग चौदह पूर्वों में से विद्यानुवादपूर्व – मंत्र, तन्त्र एवं यन्त्रों का विशालतम संग्रह है। जैन मन्त्र शास्त्र की परम्परा में अनेक कल्पग्रन्थ मिलते हैं, यथा–1. भैरव पद्‌मावती कल्प, 2. ज्वालामालिनी कल्प, 3. अम्बिका कल्प, 4. कूष्माण्डा कल्प, 5. चक्रेश्वरी चक्र एवं 6. सरस्वती कल्प आदि। जैन कल्प ग्रन्थों के अनेक मन्त्र जैसे णमोकार मन्त्र, घण्टाकर्ण मन्त्र, सप्ताक्षरी मन्त्र, पद्‌मावती मन्त्र, ज्वालामालिनी मन्त्र, चक्रेश्वरी मन्त्र, ल्लोगस्सकल्प एवं सांतिकर आदि मन्त्रों की श्रावक एवं साधुओं द्वारा आज भी समान रूप से साधना की जाती है।

बौद्ध धर्म के वज्रयान एवं महायान सम्प्रदायों में मन्त्र, तन्त्र एवं स्तोत्रों की बहुलता पायी जाती है। बौद्ध, धारिणी एवं ताराओं की उपासना के लिए मन्त्र-तन्त्रों का व्यापक रूप में प्रयोग किया जाता है। बौद्धों में अतिवृष्टि, अनावृष्टि, रोग, महामारी एवं जीवन की विविध समस्याओं के समाधान के लिए मन्त्रों की सहायता ली जाती है।

बौद्ध तन्त्रों के चार भेद मिलते हैं

1 क्रियातन्त्र | 2 चर्यातन्त्र | 3 योगतन्त्र | 4 अनुत्तर योगतन्त्र

वस्तुतः जैसे वेद की प्रत्येक ऋचा एक मन्त्र है और भगवान् शिव के मुख से निकला प्रत्येक शब्द मन्त्र है, ठीक उसी प्रकार ग्रन्थ साहब का प्रत्येक शबद और कुरान की प्रत्येक आयत भी एक मन्त्र है। सत्य यह है, कि संसार के संकटों से त्रस्त आस्तिकों की प्रार्थनाओं ने स्तोत्र, और ज्ञानियों की अत्तश्चेतना ने मन्त्र के रूप में अवतरित होकर संसार के ताप को शान्त किया है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

BOOK-LIST

ASTROLOGY, PALMISTRY, VAASTU & FENG-SHUI

शनि क्या है......	55.00
विपत्ति नाशक चमत्कारी श्री शनि शांति नित्य पाठ.....(रंगीन)	30.00
श्री शनि शांति कष्ट निवारक उपाय(स्तुति, मंत्र एवं उपासना).(रंगीन)	200.00
सूर्य, चन्द्रमा, गुरु और आप	85.00
मंगल और आप	70.00
बुध और आप	70.00
शुक्र और आप	70.00
राहु केतु नेप्च्यून हर्षल और आप	70.00
राशि ग्रह और आप	75.00
ग्रह नक्षत्र-अंक रेखाएँ सब मिल आपको धनी बनाएँ....(रंगीन)	150.00
भृगु संहिता सरल राज उपाय खण्ड....(रंगीन)	175.00
भृग संहिता सरल संतान उपाय खण्ड (संतान प्राप्ति के रहस्य)...(रंगीन)	150.00
वास्तु दोष निवारण......	40.00
वास्तु और आप	80.00
स्त्री गुण-दोष विचार...रंगीन	75.00
मंत्र, तंत्र, यंत्र और रुद्राक्ष ......रंगीन	150.00
मुहुर्त का ज्ञान लाए जीवन में आन, बान और शान....रंगीन	225.00
संतान सुख कब और कैसे?....रंगीन	195.00
ज्यातिष निर्देष प्रेम और विवाह के सुखद संदेश...रंगीन	200.00
आज का सुझाव (366 एक सुझाव रोज का) ...रंगीन...	100.00
रत्न एवं उप-रत्न प्यार आरोग्य समृद्धि और सफलता के लिए (रंगीन).	175.00
पत्तों और पांसों के कमाल, प्यार, आरोग्य समृद्धि और सफलता का जाने हाल (Box Pack)-.....(रंगीन)	250.00
अंकों का कमाल करें जीवन मालामाल....(रंगीन)	150.00
भाग्य का द्वार टैरट कार्ड का आधार जानें सटीक भविष्यवाणी करने की अनूठी कला को (Box Pack)-....(रंगीन)	295.00
प्रेम पुकार......	100.00
सरल ज्योतिष....	90.00
अष्टकवर्ग सिद्धान्त....	90.00
सरल हस्तरेखा उपाय.....	55.00
लग्न-दर्पण	150.00

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कष्ट निवारक लाल किताब ....(रंगीन) 150.00
योग विचार........(रंगीन)..75.00
शुभाशुभ-ज्ञानम् (आपका घरेलू ज्योतिषी)........(रंगीन)...........................80.00
अंको का कमाल करे जीवन मालामाल ....(रंगीन) 150.00
कालसर्प योग कारण, निवारण और अनुष्ठान....(रंगीन) 200.00
कष्ट निवारक चमत्कारी उपाय....(रंगीन)..100.00
मन्त्रसाधना और सिद्धान्त....प्रो0 शुकदेव चतुर्वेदी....(रंगीन). 150.00
मन्त्रसाधना द्वारा ग्रहचिकित्सा....प्रो0 शुकदेव चतुर्वेदी....(रंगीन)..................100.00
ग्रहदोष कारण एवं निवारण....प्रो0 शुकदेव चतुर्वेदी....(रंगीन)......................125.00
मुहूर्त विज्ञान....प्रो0 शुकदेव चतुर्वेदी....(रंगीन)......................................135.00
भारतीय वास्तुशास्त्र (वर्तमान सन्दर्भ में समग्र परिशीलन)....प्रो0 शुकदेव चतुर्वेदी....(रंगीन) ...150.00
चमत्कारिक लक्ष्मी यंत्र (अंको का खजाना).... ....125.00
श्री साई गृह वास्तु सूत्र..130.00
प्रगतिशील वास्तु.... ....195.00
जानिये भविष्य आई-चिंग द्वारा एवं द्वार का प्रभाव...... ....75.00
(साथ पाऐ तीन भाग्यवर्धक चीनी सिक्के) मेदिनीय ज्योतिष लघु संहिता.. ..90.00
सुख का आधार वास्तु द्वारा सुधार बिना तोड़े-फोड़े 30.00
108 सुनहरी उपाय प्यार, आरोग्य,
समृद्धि और सफलता के लिए ....(16 पृष्ठ रंगीन)...................................90.00
सामुद्रिक शास्त्र संजीवनी रेखा (जीवन रेखा)....(रंगीन)................................95.00

Saturn & You ---60.00
Sun & You---55.00
Moon & You ---55.00
Mars & You--75.00
Mercury & You---75.00
Jupiter & You --55.00
Venus & You --75.00
Rahu Katu Neptune Harshal and You ------------------75.00
Vaastu & your life
(Corrections without Demolition)---------------------------50.00
Instant Astrology -------------------------------------75.00
Media Astrology--95.00

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

Kundalini The Divine Power of
Human Body *(Coloured)*----------------------------------135.00

Secrets of Mantra, Tantra, Yantra and
Rudraksha *(Coloured)* ------------------------------------150.00

Meditation of Successful Life *(Coloured)*---------------150.00

Gemstones For Love Health
Wealth and Prosperity *(Coloured)*----------------------195.00

Today's Tip *(365 Tips One Tip for a
day keeps the problems away) (Coloured)*-------------150.00

Secrets Revealed Through
the Cards and Dices *(Box Pack) (Coloured)*-----------275.00

Tarot the Mysterious
Soothayer *(Box Pack) (Coloured)* ----------------------350.00

An Astrological Mannual for Marrige & Love ---------150.00

**Dic. of Dreams Interpretation
and understanding ---------------------------------------195.00

Women of your destiny *(Coloured)*--------------------195.00

Saral Jyotish --150.00

Vaastu secrets that change your life ------------------50.00

Life Path Through Numerology *(Coloured)* ------------175.00

Joyful Living through Astrological Remedies- ---------65.00

Joyful Living through Vaastu Remedies --------------100.00

Joyful Living through Domestic Vaastu ----------------65.00

Remedies of Palmistry- ----------------------------------60.00

Progressive Vaastu --------------------------------------225.00

The Secrets of a Happy
Life Through PyraVastu & Feng-Shui ------------------90.00

Magic Loshu-Grid*(Treasure of Numbers)* -------------260.00
(With 12 Coloured Instant Trigram Therapy) (Coloured)

108 Golden Tips For Love,
Health, Wealth & Success. -----------------------------100.00

Advance Interior Designing
Incorporating Vaastu & FengShui ----------------------90.00

Chinese Astrology --90.00

The Rationale Behind Indian Rituals and Beliefs ---168.00

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भारत के राष्ट्रपति डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम द्वारा
प्रो0 शुकदेव चतुर्वेदी जी को सम्मान पत्र प्रदान कर सम्मानित करते हुए।

प्रो0 शुकदेव चतुर्वेदी

व्यक्ति की प्रसुप्त दैवी चेतना को जाग्रत कर महनीय शक्ति के लाभ सामञ्जस्य कराने वाला गूढ़ज्ञान मन्त्र कहलाता है। इसका प्रतीकात्मक रूप 'यन्त्र' और क्रियात्मक प्रविधि 'तन्त्र' कहलाता है। यह एक ऐसी पराविद्या है, जो जीवन के घात-प्रतिघात से त्रस्त मानव मात्र की अन्तश्चेतना को स्वतः स्फूर्त कर उसको इस त्रासदी से मुक्ति का मार्ग दिखाती है।

संस्कृत भाषा में लिखित इस शास्त्र के सारतत्त्व को लेकर हिन्दी भाषा में लिखित इस ग्रन्थ के सिद्धान्तखण्ड में, मन्त्र का स्वरूप व उसकी विश्वसनीयता, परिभाषा एवं उसके भेदों के साथ-साथ मन्त्रमेलापक के लिए कुलाकुल चक्र, अकडमचक्र, अकथह चक्र, मन्त्रार्थ, मन्त्र वैतन्य मन्त्रों की कुल्लिका, उसके सेतु एवं महासेतु, मन्त्रों के दोषों की निवृत्ति के लिए उसके जनन आदि संस्कार तथा मन्त्र साधना विधि सोलह अंगों का शास्त्रीय रीति से वर्णन एवं विवेचन किया गया है।

इस ग्रन्थ के प्रयोग खण्ड में मन्त्र पुरश्चरण के नियम, पुरश्चरण का स्थान, दीप स्थान एवं कूर्मचक्र, आहार के नियम, ग्रहण पुरश्चरण के नियमों के साथ-साथ श्री गणेश, श्री कृष्ण, श्री नृसिंह, श्री हनुमान, श्री शिव, श्री कार्तवीर्य, श्री कुबेर, श्री दुर्गा, श्री लक्ष्मी, श्री सरस्वती श्री महागौरि एवं दरिद्रता नाशक रवि आदि देवी-देवताओं के मन्त्रों के साथ इनके विनियोग, ऋष्यादिन्यास, करन्यास, अंगन्यास, वर्णन्यास, पदन्यास, पूजन यन्त्र, ध्यान एवं इनके अनुष्ठान की विधियों का निरूपण किया गया है।

इस प्रकार मन्त्र शास्त्र की मूल संकल्पना आधार भूत सिद्धान्त एवं प्रयोग-विधि पर लिखित यह शास्त्रीय ग्रन्थ ज्योतिष शास्त्र, मन्त्रशास्त्र एवं पराविद्याओं के विद्वान् अध्येता छात्रों एवं जिज्ञासुओं के लिए समान रूप से पठनीय एवं संग्रहणीय है।

प्रदीप कुमार

ISBN 81-7727-312-4

9 788177 273120

PRICE Rs. 150.00
US $ 13.95
UK £ 8.95

INDICA PUBLISHERS
1680-81, MEHTA MARKET, NAI SARAK, DELHI-110006
Ph.:23243756, 23240270, 23240256, 9311402424, 9313492424
E-mail : Indica_pradeep@yahoo.co.in
Website : www.indica.com

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal